राजकमल

मनोविज्ञान माला १४

हमारे जीवन का अर्थ

(भाग पाँच)

डॉक्टर एल्फ्रेड एडलर

...र्थ है—सहयोग। सहयोग की इस नींव पर ही हमारे ...र सामाजिक जीवन का ढाँचा बनना आवश्यक है।" यही इस पुस्तक का मूल-सूत्र है।

राजकमल प्रकाशन

राजकमल मनोविज्ञान माला—१४

हमारे जीवन का अर्थ

(भाग पाँच)

लेखक की What Life Should Mean to You का अनुवाद

लेखक
एल्फ्रेड एडलर

अनुवादक
ओं प्रकाश



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली · इलाहाबाद बम्बई

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई।

प्रथम संस्करण, १९४९
द्वितीय संस्करण, १९५६

मूल्य ~~एक रुपया~~
१-२५

मुद्रक
रमेश प्रेस, लायब्रेरी रोड,
दिल्ली।

क्रम

अपराध और उसे रोकने के उपाय

वैयक्तिक मनोविज्ञान की सहायता से हम मनुष्यों के सब भेदों को समझने लगते हैं और ऐसे मनुष्य एक-दूसरे से अधिक मात्रा में भिन्न भी नहीं होते। जो असफलता समस्याजनक बच्चों, स्नायु-रोगियों, मानस-रोगियों, आत्म-हत्यारों, शराबियों और यौन-विकृति के अनुगामियों में दिखाई पड़ती है, वैसी ही असफलता का प्रदर्शन अपराधियों में होता है। ये सब लोग जीवन की समस्याओं का सामना करने में विफल हो जाते हैं और एक निश्चित और सुप्रत्यक्ष बात में एक समान ही विफल होते हैं। इनमें से प्रत्येक समाज के प्रति अभिरुचि में असफल होता है। वे लोग दूसरे मनुष्यों से अपना कोई सम्बन्ध नहीं समझते। इस बात में हम इन्हें शेष मनुष्यों से नितान्त भिन्न नहीं मान सकते; किसी व्यक्ति को भी पूर्ण सहयोग तथा पूर्ण सामाजिक अनुभूति का आदर्श नहीं कहा जा सकता। अपराधियों की असफलता साधारण तौर पर पाई जाने वाली असफलताओं की कठोरतर व विषमतर मात्रा ही होती है।

अपराधियों को समझने के लिए एक दूसरी बात समझना भी आवश्यक है, परन्तु इस बात में भी वे हम सबके समान होते हैं। हम सब कठिनाइयों पर पार पाना चाहते हैं। हम भविष्य में ऐसे लक्ष्य तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं जिसे प्राप्त करके हम अपने को शक्तिशाली, उच्चतर और सम्पूर्ण

समझ सकें। प्रोफेसर ड्यूवी इस प्रवृत्ति को सुरक्षा के लिए किये जाते हुए प्रयत्न कहकर पुकारते हैं और इसमें वह ठीक हैं। कई दूसरे लोग इसे आत्म-संरक्षण के लिए किये जा रहे प्रयत्न कहते हैं। परन्तु हम इसे चाहे जो भी नाम दें, मनुष्यों में सक्रियता की एक सतत प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है—एक निचली स्थिति से उच्चतर स्थिति तक पहुँचने का संघर्ष, पराजय से विजय की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर जाने के अविराम प्रयत्न। इनका आरम्भ शैशव में हो हो जाता है और यह क्रम जीवन-पर्यन्त जारी रहता है। जीवन का अर्थ इस नक्षत्र के धरातल पर रहना, बाधाओं पर पार पाना और कठिनाइयों को जीतना होता है। इसलिए हमें अपराधियों में ठीक ऐसी ही प्रवृत्ति देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। एक अपराधी अपनी सब हरकतों और दृष्टिकोणों में यही दरशाता है कि वह उच्चतर होने के लिए, समस्याओं को सुलझाने के लिए और कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए ही संघर्ष कर रहा है। जो बात उसकी भिन्नता दरशाती है वह यह नहीं है कि वह इस प्रकार कोशिश कर रहा है, परन्तु यह कि उसके प्रयत्न किस दिशा की ओर बढ़ रहे हैं। जैसे ही हम यह समझ लें कि सामाजिक जीवन की माँगों को न समझने और शेष मनुष्यों की उपेक्षा करने के कारण ही वह उस दिशा की ओर बढ़ रहा है, हम उसकी हरकतों का मतलब समझने लगेंगे।

मैं इस बात पर विशेष जोर देना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसे लोग भी हैं जो इसे ठीक नहीं समझते। वे अपराधियों को मानव-जाति में विशिष्ट, साधारण लोगों से भिन्न मानते हैं। उदाहरण के लिए कुछ वैज्ञानिकों का दावा है कि अपराधी निर्बल मस्तिष्क के व्यक्ति होते हैं। कुछ दूसरे लोग बपौती पर अधिक जोर देते हैं; उनका विश्वास है कि अपराधी जन्म से ही अप-

राधी होता है तथा अपराध करना छोड़ नहीं सकता। इनके अतिरिक्त कुछ दूसरे लोग यह मानते हैं कि अपराध वातावरण द्वारा निर्बाध रूप से निश्चित कोई चीज है; जो एक बार अपराध करता है वह सदैव अपराधी रहता है। इन सब धारणाओं के विरुद्ध पर्याप्त साक्षी प्रस्तुत की जा सकती है। और हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि यदि हम इन्हें स्वीकार कर लें तो हम अपराध की समस्या से जूझने की आशा से वंचित हो जायँगे। हम तो आज के दिन ही मानव के इस सर्वनाश से बच जाना चाहते हैं। सारा इतिहास हमें बताता है कि अपराध सदा सर्वनाश के समान हुआ करता है; अब हम इसके सम्बन्ध में कुछ करने को उत्सुक हैं और केवल यह कहकर समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकते कि "इस सबका सम्बन्ध तो विरासत से है, इसलिए कुछ भी करना सम्भव नहीं।"

वातावरण अथवा वंश-परम्परा में कोई विवशता नहीं पाई जाती। एक ही परिवार और एक ही वातावरण के बच्चे भिन्न-भिन्न विधियों से विकास कर सकते हैं। कभी-कभी एक अपराधी धवल कीर्ति के किसी परिवार में से भी पैदा हो जाता है। कभी-कभी एक कुख्यात परिवार में भी, जिसके सदस्यों को कारागारों और सुधार-गृहों का प्रायः अनुभव हो चुका हो, हम अच्छे चरित्र और अच्छे व्यवहार के बच्चों को देखते हैं। ऐसा भी होता है कि कुछ अपराधी बाद के जीवन में सुधर जाते हैं। अपराध के अध्ययन में संलग्न मनोवैज्ञानिक कई बार इसकी व्याख्या में हैरान हो जाते हैं कि किस प्रकार एक नम्बरी चोर तीस वर्ष की आयु में पहुँचने के बाद शान्तिपूर्वक रह सकता है और अच्छा नागरिक बन जाता है। यदि अपराध एक जन्मजात दोष है और इसका निर्माण वातावरण द्वारा निश्चित रूप में हो जाता है तो यह बात समझ में नहीं आ सकती। किन्तु

अपने दृष्टिकोण से इसे हम भली भाँति समझ सकते हैं। शायद यह व्यक्ति अब अधिक लाभजनक परिस्थितियों में है, उससे की जाने वाली माँगें कम हैं और अब उसके जीवन की भूलें सतह पर नहीं लाई जातीं; अथवा सम्भवतः जो कुछ वह प्राप्त करना चाहता था कर चुका है; अथवा सम्भवतः वह उम्र में बड़ा और शरीर से मोटा हो रहा है और अपराधमय जीवन के उपयुक्त नहीं रहा; उसके घुटनों में दर्द रहने लगा है और अब वह दीवारों पर आसानी से नहीं चढ़ सकता; चोरी करने और सेंध लगाने के काम अब उसके लिए अधिक कठोर हो गए हैं।

इससे पहले कि मैं आगे बढ़ूँ, मैं इस विचार को दूर कर देना चाहता हूँ कि अपराधी पागल होते हैं, ऐसे मानस-रोगी भी होते हैं जो अपराध किया करते हैं, किन्तु उनके अपराध एक भिन्न ही ढंग के होते हैं। हम उन्हें उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते, उनके अपराध उन्हें किंचिन्मात्र भी न समझने और उनसे व्यवहार करने के गलत तरीके के कारण होते हैं। यही कुछ हम निर्बल मस्तिष्क के अपराध के विषय में, जो एक निर्बुद्धि व्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं होता, कह सकते हैं। असली अपराधी तो वे होते हैं जो अपराधों की योजना बनाते हैं। वे सम्भावनाओं का सुनहरी रेखाओं में चित्रण करते हैं, निर्बल मन के व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाओं अथवा कल्पना को उत्तेजित करते हैं और इसके बाद स्वयं छिप जाते हैं तथा अपने शिकारों को अपराध को कार्यान्वित करने और सजा भुगतने का खतरा उठाने के लिए छोड़ देते हैं। जब पुराने और अनुभवी अपराधी अपने से छोटे लोगों का प्रयोग करते हैं तब भी ऐसा ही होता है। अनुभवी अपराधी अपराधों का

चित्र बनाते हैं और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए बच्चों जैसे व्यक्तियों को फँसा लेते हैं।

मैंने सक्रियता की जिस सतत दिशा की ओर इशारा किया है अब हम उसकी ओर आएँ। यह दिशा वह है जिस ओर बढ़कर हर अपराधी और शेष सब मनुष्य भी विजय पाने और अपनी स्थिति की चरम सीमा तक पहुँचने की कोशिश किया करते हैं। हमें इन ध्येयों में कितने ही भेद और कितने ही प्रकार मिलते हैं तथा हम देखते हैं कि एक अपराधी का ध्येय सदैव व्यक्तिगत रूप में ही उच्चतर होना होता है। जिस ध्येय के लिए वह प्रयत्नशील है वह दूसरों को कुछ प्रदान नहीं करता। वह सहयोग से विरत है। समाज अपने सदस्यों से और हम एक-दूसरे से एक साझी उपयोगिता, सहयोग की क्षमता आदि की उपेक्षा करते हैं। एक अपराधी के ध्येय में समाज के प्रति इस उपयोगिता का कोई स्थान नहीं है और इस अपराधमय जीवन का वास्तव में यही विचारणीय पहलू होता है। हम बाद में देखेंगे कि इस प्रकार क्योंकर होता है। इस वक्त तो मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि यदि हम किसी अपराधी को समझना चाहते हैं तो जानने योग्य मुख्य बात यह है कि हम उसकी सहयोग करने में असफलता की मात्रा और प्रकृति को समझें। अपराधियों में सहयोग की क्षमता भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है, उनमें से कुछ अपराधी दूसरों से कम गम्भीर रूप में असफल होते हैं, कुछ अपने को छोटे-मोटे अपराधों तक ही सीमित रखते हैं और इन सीमाओं से बाहर नहीं जाते। दूसरे अपराधी प्रमुख अपराधों को करना पसन्द करते हैं; कुछ नेतृत्व करते हैं और शेष अनुयायी होते हैं। अपराधमय जीवनों की भिन्नताओं को समझने के लिए आवश्यक है कि हम वैयक्तिक जीवन-प्रणालियों की अधिक जाँच करें।

एक साधारण प्रकार के अपराधी की जीवन-प्रणाली का निर्माण बहुत पहले हो चुकता है। इसमें पाई जाने वाली प्रमुख विशेषताओं को हम चार अथवा पाँच वर्ष की आयु में ही देख सकते हैं; हालाँकि यह अनुमान गलत होगा कि इसमें परिवर्तन करना कोई आसान बात है। यह तो एक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है, इसे तो उस व्यक्तित्व के निर्माण में की गई भूलों को समझने के बाद ही बदला जा सकता है। अब हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार ऐसे अपराधी, जो कितनी ही बार सजा भोग चुके हैं, कितनी ही बार अपमानित और घृणित माने गए हैं और सामाजिक जीवन की प्रत्येक अच्छाई से वंचित किये गए हैं, फिर भी नहीं सुधरते और उन्हीं अपराधों को करना जारी रखते हैं। यह आर्थिक कठिनाई नहीं है जो उन्हें अपराध करने पर विवश करती है। यह सच है कि यदि कठिन समय बीत रहा हो और लोगों पर अधिक बोझ पड़ा हो तो अपराधों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। हमें आँकड़ों से पता चलता है कि अनाज का मूल्य बढ़ने के साथ-साथ अपराधों की संख्या भी बढ़ी है, किन्तु यह इस बात का लक्षण नहीं है कि आर्थिक स्थिति अपराध का कारण बनती है। यह तो इस बात का अधिक द्योतक है कि बहुत से लोग अपने व्यवहार में सीमित होते हैं, उनकी सहयोग-क्षमता सीमित होती है और जब वे इन सीमाओं तक पहुँच जाते हैं फिर अपने प्रदान को जारी नहीं रख सकते। वे सहयोग के अन्तिम अवशेषों तक को गँवा बैठते हैं तथा अपराध करने लगते हैं। दूसरे तथ्यों से भी हमें यह पता चलता है कि बहुत से व्यक्ति लाभान्वित परिस्थितियों में अपराधी नहीं होते, परन्तु जब ऐसी समस्याएँ पैदा हो जायँ जिनके लिए वे तैयार न हों तो वे भी अपराध कर सकते हैं। महत्वपूर्ण बात

तो जीवन-प्रणाली व समस्याओं का सामना करने की विधि ही होती है।

वैयक्तिक मनोविज्ञान में इतना अनुभव कर लेने के बाद हम अन्त में एक बड़ी सीधी बात को सरल और स्पष्ट कर सकते हैं। एक अपराधी की दूसरों में कोई दिलचस्पी नहीं होती। वह एक सीमा तक ही सहयोग कर सकता है। जब यह सीमा स्पर्श कर ली जाती है तब वह अपराध की ओर घूम जाता है। यह सीमा उस समय छू ली जाती है जब कि उसके लिए समस्या बहुत कठिन हो। जीवन की उन समस्याओं पर, जिनका हल हम सबको ढूँढ़ना होता है तथा जिन्हें एक अपराधी सुलझाने में सफल नहीं होता, विचार करना रोचक होगा। अन्त में हमें यही मालूम पड़ेगा कि हमारे जीवन में सामाजिक समस्याओं को छोड़कर दूसरी कोई समस्या नहीं होती। ये समस्याएँ दूसरों में दिलचस्पी लेने से ही सुलझ सकती हैं।

वैयक्तिक मनोविज्ञान ने हमें जीवन की समस्याओं के तीन बड़े विभाग करने की शिक्षा दी है। पहले हम दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने की समस्या, साहचर्य की समस्या, पर विचार करते हैं। कभी-कभी अपराधियों के भी मित्र हो सकते हैं, परन्तु अपने समान लोगों में से ही। वे टोलियाँ बना सकते हैं और एक-दूसरे के प्रति अनुरक्ति तक का प्रदर्शन भी कर सकते हैं। परन्तु हमें यहाँ तुरन्त स्पष्ट हो जायगा कि इन्होंने किस प्रकार अपनी गति-विधि का क्षेत्र छोटा कर लिया है। वे समाज के साधारण लोगों को भी अपना मित्र नहीं बना सकते। वे अपने को निर्वासितों जैसा बना लेते हैं और यह नहीं जानते कि साथी मनुष्यों के बीच किस प्रकार सहजतापूर्वक रहा जा सकता है।

दूसरे प्रकार के समस्या-समूह में व्यवसाय से सम्बन्धित सब समस्याएँ आ जाती हैं। बहुत से अपराधी इन समस्याओं के सम्बन्ध में पूछे जाने पर उत्तर देते हैं—"आप नहीं जानते कि मजदूरी करने की दशा कितनी कठोर है।" उनको काम करना कठोर जान पड़ता है। दूसरों की तरह इन कठिनाइयों से जूझने की प्रवृत्ति इनमें नहीं होती। एक उपयोगी व्यवसाय का अभिप्राय दूसरे लोगों में दिलचस्पी और उनकी भलाई में सहयोग करना है, परन्तु हम ठीक इसी बात का अपराधियों में अभाव पाते हैं। सहयोग की इस तत्परता का अभाव छोटी उम्र में ही प्रकट हो जाता है और इसलिए अधिकतर अपराधी व्यवसाय-जनित समस्याओं का सामना करने के लिए अच्छी तरह शिक्षित नहीं होते। अपराधियों का अधिकांश अनभ्यस्त और अदक्ष मजदूरों में से आता है। यदि आप उनके जीवन-इतिहास का परिशीलन करें तो देखेंगे कि स्कूल में और स्कूल से भी पहले के दिनों में उनके सामने एक अवरोध और उनकी दिलचस्पी में एक बाधा उपस्थित हो गई थी। उन्होंने सहयोग करना कभी नहीं सीखा। सहयोग की शिक्षा प्राप्त करने और उसका अभ्यास करने की आवश्यकता होती है, किन्तु अपराधियों को इसकी कभी शिक्षा नहीं मिली। इसलिए यदि ये व्यवसाय की समस्या के सामने विफल हो जाते हैं तो हम इन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते। हमें तो इस बात पर उसी प्रकार विचार करना चाहिए जैसे कि भूगोल में हम किसी ऐसे व्यक्ति की परीक्षा ले रहे हैं, जिसने कभी भूगोल का विषय नहीं पढ़ा; या तो वह व्यक्ति हमें ग़लत उत्तर देगा अथवा चुप्पी ही साधेगा।

तीसरे समूह में प्रेम की सब समस्याएँ सम्मिलित की जाती हैं। एक अच्छा और सफल प्रेममय जीवन इसी प्रकार दूसरे

व्यक्ति से भी दिलचस्पी और सहयोग की अपेक्षा रखता है। यह जानना विस्मयजनक होगा कि सुधार-गृहों में भेजे जाने वाले आधे अपराधी सुधार-गृहों में प्रविष्ट होने के समय रतिज रोगों से ग्रस्त होते हैं। इस बात से यह दिखाया जा सकता है कि वे प्रेम की समस्या को हल करने की कोई सरल राह खोज रहे थे। वे प्रेम-पात्र को केवल अपनी सम्पत्ति के एक अंश के समान मानते थे। प्रायः उनमें हम यह विचार पाते हैं कि प्रेम को रुपये-पैसे से खरीदा जा सकता है। ऐसे लोगों के लिए यौन-सम्बन्ध का जीवन लूट और अपहरण के समान होता है। उन पर उनका स्वामित्व ही होना चाहिए, जीवन में साहचर्य नहीं। बहुत से अपराधी कहा करते हैं—"मैं जो कुछ भी चाहता हूँ, यदि वह मुझे नहीं दिया जाता तो जीवन का लाभ ही क्या है ?"

अब हम जान सकते हैं कि अपराधियों का उपचार कहाँ से शुरू किया जाय। आवश्यक यह है कि हम उन्हें सहयोग की शिक्षा दें। उन्हें केवल सुधार-गृहों में बन्द करने से कोई लाभ नहीं है और उन्हें खुला छोड़ देना भी खतरे से पूर्ण है। वर्तमान परिस्थितियों में इस पर विवाद नहीं किया जा सकता। समाज की अपराधियों से रक्षा करनी ही चाहिए, परन्तु केवल यही तो सब-कुछ नहीं है। हमें यह भी सोचना चाहिए कि जो अपराधी सामाजिक जीवन के लिए तैयार नहीं हैं उनसे हम किस प्रकार बरतें। जीवन की सभी समस्याओं में सहयोग का अभाव कोई छोटी कमी नहीं है। हमें तो दिन के प्रत्येक क्षण में सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। हमारे सहयोग की मात्रा और क्षमता हमारे देखने, बोलने और सुनने के ढंग से प्रकट हो जाती है। यदि मैं अपने पर्यवेक्षण में ठीक हूँ तो अपराधी दूसरों से भिन्न प्रकार से देखते, बोलते और सुनते हैं। उनकी भाषा भिन्न होती

है और यह समझना आसान है कि उनकी बुद्धि के विकास में इस भिन्नता से बाधा पड़ती रही है। जब हम बोलते हैं तो हमारी इच्छा होती है कि सब हमें समझ सकें। समझना तो स्वयं ही एक सामाजिक तथ्य है; हम शब्दों को एक सांझा अभिप्राय देते हैं, हम उनसे वही कुछ समझते हैं जो उनसे कोई दूसरा समझ सकता है। इस सम्बन्ध में अपराधियों का व्यवहार भिन्न प्रकार का होता है। उनका एक व्यक्तिगत तर्क और व्यक्तिगत ही बुद्धि होती है। हम इस बात को अपराधों के विषय में दी गई उनकी व्याख्या से भली भांति समझ सकते हैं। वे निर्बुद्धि अथवा निर्बल मन के व्यक्ति नहीं होते। यदि हम उनकी अवास्तविक, वैयक्तिक श्रेष्ठता के ध्येय को स्वीकार कर लें तो वे जो निष्कर्ष निकालते हैं वह प्रायः ठीक ही होते हैं। एक अपराधी कहता है—"मैंने एक आदमी को देखा जिसके पास एक बढ़िया पतलून थी, मेरे पास नहीं थी इसलिए मुझे उसको मार देना पड़ा।" अब हम यदि यह मान लें कि उसकी इच्छापूर्ति ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है और उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी उपयोगी ढंग से जीविकोपार्जन करे तो उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष समझ में आ सकता है, परन्तु यह बुद्धि-संगत बात नहीं है। अभी हाल में ही गहेरी की एक अदालत में एक मुकद्दमा चला। कुछ स्त्रियों ने विष देकर कितनी ही हत्याएँ की थीं। उनमें से जब एक को जेल भेजा गया तो उसने कहा—"मेरा लड़का बीमार रहा करता था और लफंगा था, इसलिए मुझे उसको विष देना पड़ा।" यदि वह सहयोग को अपने कर्तव्य से परे की वस्तु मानती है तो उसके लिए करने को शेष रहा ही क्या ? वह बुद्धि-मती है किन्तु उसका दृष्टिकोण व समझ-बूझ का तरीका सबसे भिन्न है और अब हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार

अपराधी प्रवृत्ति के लोग जब वे चित्ताकर्षक वस्तुओं को देखते हैं और उन्हें सरल ढंग से हथियाना चाहते हैं यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि उन्हें ये वस्तुएँ शत्रुतापूर्ण संसार से, जिसमें उनको जरा भी दिलचस्पी नहीं है, छीन ही लेनी चाहिएँ। वे संसार के प्रति एक गलत दृष्टिकोण से, अपने तथा दूसरे लोगों के महत्व के एक गलत अनुमान से, दबे हुए होते हैं।

परन्तु उनके सहयोग के अभाव पर विचार करते समय यही सबसे प्रमुख बात नहीं है। सब अपराधी कायर होते हैं; वे उन समस्याओं से बच निकलना चाहते हैं, जिन्हें सुलझाने के लिए वे अपने अन्दर पर्याप्त दृढ़ता नहीं पाते। अपने अपराधों के अतिरिक्त उनकी कायरता उस ढंग में भी देखी जा सकती है जिस ढंग से वे जीवन का सामना करते हैं। उनके द्वारा किये गए अपराधों में भी उनकी कायरता प्रदर्शित होती है। वे अपनी रक्षा का प्रयत्न अन्धकार और अकेलेपन का प्रयोग करके करते हैं। किसी पर अचानक आक्रमण करके, इससे पहले कि वे आत्म-रक्षा करें, उस पर हथियार चला देते हैं। अपराधी समझते हैं कि वे अपने कृत्यों से साहसी बनकर दिखा रहे हैं, परन्तु हम धोखा नहीं खा सकते। अपराध तो वीरता की एक कायर द्वारा उतारी हुई नकल होती है। वे वैयक्तिक श्रेष्ठता के एक गलत लक्ष्य की ओर प्रयत्नशील रहते हैं और यह विश्वास करना चाहते हैं कि वे बहादुर हैं; परन्तु यह समझने का एक गलत तरीका है और साधारण समझ-बूझ की असफलता है। हम जानते हैं कि वे कायर हैं और यदि उन्हें यह निश्चय हो जाय कि हम उनके कायर होने की बात जानते हैं तो उनको बड़ा धक्का लगेगा। पुलिस को हराने के विचार से उनकी अहम्मन्यता और गर्व में वृद्धि होती है और वे सोचते हैं—"मैं कभी पकड़ा नहीं जा सकता।"

दुर्भाग्य की बात है कि यदि हर अपराधी के कृत्यों की गहरी छानबीन की जाय तो मुझे विश्वास है कि वह कुछ ऐसे अपराध भी कर चुका है जिनका पता नहीं चला; यह बात बड़ी दुखदाई है। जब आखिर वे पकड़े ही जाते हैं तो सोचते हैं—"इस बार मैं अधिक चालाक सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु अगली बार मैं अवश्य इन्हें धोखा दे सकूँगा।" यदि वे इसमें सफल हो जायँ तो सोचते हैं कि उन्होंने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया; वे अपने को उच्चतर अनुभव करते हैं और अपने साथियों से प्रशंसा और श्लाघा पाते हैं।

आवश्यक है कि हम अपराधी की वीरता और चालाकी के इस अनुमान में विक्षोभ उत्पन्न करें। परन्तु ऐसा कब किया जा सकता है? हम यह परिवार, स्कूल अथवा सुधार-गृहों में कर सकते हैं। मैं इस पर हमला करने के सर्वोत्तम तरीके का वर्णन पीछे करूँगा; यहाँ तो उस वातावरण पर अधिक विचार करना चाहता हूँ, जिसमें सहयोग की भावना असफल रह जाती है। कभी-कभी इसका उत्तरदायित्व माता-पिता पर भी डाला जा सकता है। सम्भवत: माता इतनी चतुर नहीं थी कि बच्चे का सहयोग अपने तक आकृष्ट कर सकती; शायद वह अपने को इतना सम्पूर्ण समझती थी कि उसे कोई सहायता नहीं पहुँचा सकता था अथवा वह स्वयं सहयोग के लिए असमर्थ थी। यह समझना आसान है कि दुखी अथवा भग्न विवाह-सम्बन्धों में सहयोग की भावना का विकास ठीक ढंग से नहीं होता। बच्चे का प्रथम सम्बन्ध अपनी माता से होता है, सम्भवत: माता बच्चे की सामाजिक दिलचस्पी को पिता तथा दूसरे बच्चों और अन्य वयस्कों तक बढ़ाना नहीं चाहती थी। अथवा यह भी सम्भव हो सकता है कि बच्चा अपने को सारे परिवार का स्वामी अनुभव किया करता था। उसकी तीन अथवा चार वर्ष की

आयु में एक दूसरे बच्चे का जन्म हुआ और उसने समझा कि मानो उसकी हार हुई है अथवा उसे पदच्युत कर दिया गया है, वह अपनी माता अथवा छोटे बच्चे से सहयोग करने से इनकार कर देता है। इन सब बातों पर ध्यान देना उचित है और जब आप एक अपराधी के बीते जीवन पर नजर दौड़ाएँ तो आप प्रायः सदा ही यह देखेंगे कि उसकी कठिनाइयाँ उसके आरम्भिक पारिवारिक अनुभवों में शुरू हुई थीं। केवल वातावरण का ही कोई अपना महत्त्व न था, परन्तु बच्चे ने अपनी स्थिति को गलत समझा तथा उसे उसकी स्थिति की ठीक व्याख्या करने वाला कोई नहीं मिला।

यदि कोई बच्चा परिवार में विशेष प्रमुख और अधिक गुणी हो तो यह बात दूसरे बच्चों के लिए सदा कठिनताजनक हुआ करती है। इस प्रकार के बच्चों को सबसे अधिक ध्यान मिलता है और दूसरे बच्चे अपने को निरुत्साहित तथा विफल मानने लगते हैं। वे सहयोग इसलिए नहीं करते, क्योंकि प्रतियोगिता की इच्छा होने पर भी उन्हें सफलता पर विश्वास नहीं होता। इस प्रकार जो बच्चे हार जाते हैं अथवा जिन्हें यह नहीं बताया गया कि वे अपनी क्षमताओं का किस प्रकार प्रयोग कर सकते हैं, प्रायः उनका असन्तोषजनक विकास दीख पड़ता है। हम उन्हीं के आधार पर अपराधियों, स्नायु-रोगियों और आत्म-हत्यारों की खोज कर सकते हैं।

सहयोग की भावना से वंचित जब कोई बच्चा स्कूल में प्रविष्ट होता है तो हम उसके इस स्वभाव को उसके व्यवहार में पहले दिन ही भाँप सकते हैं। वह दूसरे बच्चों को अपना मित्र नहीं बना सकता, वह अध्यापक को पसन्द नहीं करता, पढ़ाई में ध्यान नहीं देता तथा बोले जाते हुए पाठों को ध्यान से नहीं सुनता। यदि उससे व्यवहार में समझदारी से काम न लिया

जाय तो उसे एक नया धक्का पहुँच सकता है। उत्साहित किये जाने और सहयोग की शिक्षा दिये जाने की जगह उसे उलाहने और झिड़कियाँ मिलने लगें और वह पढ़ाई को और भी नापसन्द करने लगे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? यदि उसके उत्साह और आत्म-विश्वास की भावना पर हर समय नये-से-नये आक्रमण होते हों तो उसे अपने स्कूल के जीवन में कोई भी दिलचस्पी नहीं हो सकती। एक अपराधी के जीवन-क्रम में आप सदा यह पाएँगे कि वह तेरह वर्ष की आयु में अभी चतुर्थ श्रेणी में ही था और अपनी मूढ़-मति के लिए कोसा जाता था। इससे उसका आगे का समस्त जीवन खतरे में पड़ जाता है। दूसरों में अपनी दिलचस्पी को अधिकाधिक गँवाने लगता है। उसका लक्ष्य वेग के साथ जीवन के निरर्थक पक्ष की ओर झुकता जाता है।

निर्धनता भी जीवन का गलत अभिप्राय लगाने का अवसर देती है। एक गरीब घर में उत्पन्न हुए बच्चे का घर से बाहर ऊँच-नीच के सामाजिक दृष्टिकोण से सामना हो सकता है। उसके परिवार को कितनी ही बातों से वंचित रहना पड़ता है, कितने ही प्रकार की यातनाएँ और दुःख भुगतने पड़ते हैं। सम्भवतः स्वयं भी उसे अपने जीवन के आरम्भ में माता-पिता की सहायता के लिए कुछ पैसा कमाना पड़ता है। इसके बाद उसे धनी-मानी पुरुष दीख पड़ते हैं, जो कि आराम की ज़िन्दगी बिताते हैं और जो कुछ चाहते हैं खरीद सकते हैं। वह सोचने लगता है कि इन लोगों को इस प्रकार का सुखद जीवन बिताने का वैसे ही अधिकार नहीं है जैसे उसे नहीं है। यह समझना बहुत कठिन नहीं है कि बड़े शहरों में, जहाँ गरीबी और अमीरी की चरम सीमाएँ स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होती हैं, अपराधियों की संख्या इतनी अधिक क्यों होती है। ईर्ष्या से कोई उपयोगी

ध्येय उत्पन्न नहीं हो सकता, परन्तु ऐसी परिस्थितियों में रहने वाला बच्चा इसका गलत अर्थ अवश्य लगा सकता है और सोच सकता है कि श्रेष्ठता तक पहुँचने का रास्ता बिना काम किये पैसा कमाने में ही है।

एक आंगिक विकृति अथवा कमी के चारों ओर भी हीन-भाव केन्द्रित हो सकता है। इस सिद्धान्त का आविष्कार मेरा अपना ही है; इस बात में स्नायु-रोग और मानसोपचार में वंश-परम्परागत प्रभावों के सिद्धान्तों की कुछ जिम्मेवारी मुझ पर भी है। परन्तु जब मैंने शुरू में भी आंगिक हीनताओं (आर्गेन इनफोरियोरिटीज़) और उनके मानसिक प्रभावों (मेण्टल कम्पंसेशन्स) के बारे में लिखा तो मैं इस खतरे से अवगत था। आंगिक परिस्थिति पर किसी प्रकार का दोष नहीं मढ़ा जा सकता, परन्तु यह दोष हमारी शिक्षा के तरीकों का है। यदि हम ठीक तरीके बरतें तो विकृत अंगों वाले बच्चे अपने और दूसरों में एक साथ दिलचस्पी ले सकते हैं। यदि उसकी दिलचस्पी को दूसरों के प्रति विकसित होने में सहायता पहुँचाने के लिए किसी ऐसे बच्चे का कोई उपयुक्त साथी न हो तो विकृत अंगों वाला बच्चा केवल अपने में ही दिलचस्पी ले सकेगा। कितने ही व्यक्ति हैं जो प्रणालीहीन ग्रन्थियों के दोषों से पीड़ित होते हैं, परन्तु मैं यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है कि प्रणालीहीन ग्रन्थियों का निर्दोष साधारण क्रिया-व्यवहार क्या होता है। व्यक्तित्व को क्षति पहुँचाए बिना ही हमारी प्रणालीहीन ग्रन्थियों की सक्रियता काफी भिन्न-भिन्न होती है; विशेषतया यदि हम ऐसे बच्चों को भी दूसरे लोगों में सहयोग की भावना रखने वाले अच्छे मनुष्य बनाने के ठीक तरीके खोजना चाहते हों तो इस बात पर ध्यान रखना उचित है।

अपराधियों में एक काफी बड़ी संख्या अनाथ व्यक्तियों की हुआ करती है और मुझे अपनी सभ्यता के लिए यह बात लज्जा-जनक मालूम पड़ती है कि हम इन अनाथों में सहयोग की भावना पैदा नहीं कर सकते। इसी प्रकार बहुत से संकर बच्चे अपराधी बन जाया करते हैं; उनके प्रेम को जीतने और उसे दूसरे मनुष्यों की ओर निर्दिष्ट करने के लिए कोई भी व्यक्ति उनके जीवन के आरम्भ में उपस्थित नहीं होता। अवांछित बच्चे, विशेषतया जबकि वे जानते हों और यह अनुभव करते हों कि किसी को उनकी इच्छा नहीं थी, अपराधमय आदतों को अपना लेते हैं। अपराधियों में हम कुरूप व्यक्तियों को भी पाते हैं और इस बात को वंश-परम्परा के महत्व की साक्षी में बरता गया है, परन्तु विचार कीजिए कि एक कुरूप बच्चे के अनुभव क्या होते हैं; वे एक बहुत अलाभजनक स्थिति में होते हैं। शायद वे एक ऐसी जाति-सम्मिश्रण की सन्तान हों जिससे रूपवान बच्चे नहीं पैदा हो सकते अथवा जो सामाजिक ऊँच-नीच के विचार का शिकार हों। यदि कोई ऐसा बच्चा कुरूप हो तो उसका सारा जीवन भार-स्वरूप हो जाता है, क्योंकि उसके पास बचपन का सौन्दर्य और नवीनता, जिसे हम सब पसन्द करते हैं, नहीं होती। परन्तु यदि इन सब बच्चों से ठीक प्रकार का व्यवहार किया जाय तो उनमें सामाजिक दिलचस्पी का विकास हो सकता है।

हम कभी-कभी अपराधियों में असाधारण रूप के बच्चों और मनुष्यों को देखते हैं। जब कि उपर्युक्त किस्म के अप-राधियों को बपौती की कुरूपता का शिकार समझा जा सकता है, जिनके उदाहरण के लिए टेढ़े हाथ अथवा विदीर्ण तालु हों, तो हम इन स्वरूपवान अपराधियों के विषय में क्या समझें? वास्तव में वे भी ऐसी परिस्थिति में बढ़े हुए हैं जिसमें

सामाजिक दिलचस्पी का विकास करना कठिन था—वे लाड-प्यार से बिगाड़े गए बच्चे थे। आप देखेंगे कि अपराधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे होते हैं जो यह भी नहीं जानते कि दुनिया में सहयोग भी कोई चीज होती है, और न ही उन्होंने इस भावना का अनुभव ही किया होता है। ऐसे अपराधी का दूसरे लोगों के प्रति दृष्टिकोण शत्रुतापूर्ण होता है, उसकी भावभंगी भी शत्रुतापूर्ण होती है और वह हर व्यक्ति को अपना शत्रु ही समझता है। उसे कभी दूसरों से प्रशंसा नहीं मिली। दूसरे वे होते हैं जो लाड-प्यार से बिगड़े हुए हैं। मैंने कैदियों की शिकायत में प्रायः यह दावा देखा है, "मेरे अपराधमय जीवन का कारण यह है कि मेरी माता ने मुझसे बहुत लाड-दुलार करके मुझे बिगाड़ दिया।" इस बात के सम्बन्ध में तो बहुत-कुछ कहा जा सकता है, परन्तु मैंने इसका वर्णन यहाँ केवल इस बात पर जोर देने के लिए किया है कि अपराधियों को सहयोग की उचित मात्रा के लिए उपयुक्त अभ्यास और शिक्षा नहीं मिली होती। हो सकता है कि माता-पिता की यह इच्छा रही हो कि अपने बच्चे को अच्छा नागरिक बनाएँ परन्तु वे इसका तरीका नहीं जानते थे। यदि वे बहुत तानाशाही बरतते अथवा बहुत कठोर होते तो उनके सफल होने की कोई सम्भावना नहीं थी। यदि उन्होंने उससे बहुत लाड-प्यार किया और मानो उसे रंगमंच के बीचों-बीच खड़ा कर दिया है तो उन्होंने उसको केवल जीवित होने के नाते, अपने साथियों की सद्भावनाओं के योग्य होने के लिए कोई सृजनात्मक प्रयत्न किये बिना, अपने को महत्त्वपूर्ण समझने की शिक्षा दी है। इस प्रकार ऐसे बच्चे संघर्ष करने की क्षमता गँवा बैठते हैं और वे हमेशा यह चाहते हैं कि दूसरे उनका ख्याल करते रहें। वे सदा दूसरों से किसी-न-किसी बात की आशा करते रहते हैं।

यदि सन्तुष्टि प्राप्त करने की उन्हें कोई सरल राह नहीं मिलती तो वे इसका दोष वातावरण के मत्थे मढ़ते हैं।

इस बात के बावजूद भी कि निम्नलिखित मामलों का वर्णन मनोवैज्ञानिक निरीक्षण के लिए नहीं किया गया, हम इन पर विचार करें और देखें कि उपर्युक्त तथ्य को इनमें खोज सकते हैं या नहीं। मैं जो पहला उदाहरण दे रहा हूँ वह शेल्डन और इलीनर टी० ग्लुएक द्वारा लिखित पुस्तक 'पाँच सौ अपराध-मय जीवन' में से है। यह मामला 'कठोर जॉन' का मामला है। इस लड़के ने अपने अपराधमय जीवन के कारणों की इस प्रकार व्याख्या की है—

"मैं कभी नहीं सोचता था कि इस प्रकार बेकाबू हो जाऊँगा। पन्द्रहवें अथवा सोलहवें वर्ष की आयु तक मैं दूसरे बच्चों के समान ही था। मैं कसरत वगैरह करना पसन्द करता था और उनमें भाग लिया करता था, पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ता था, सब काम समय पर किया करता था और मेरा शेष व्यवहार भी इसी प्रकार का था। इस वक्त मेरे माता-पिता ने स्कूल से मुझे उठा लिया, काम पर लगाया और मेरी तनख्वाह के हर सप्ताह मेरे पास लगभग पौने दो रुपये छोड़कर बाकी सब लेना शुरू कर दिया।"

यहाँ वह एक आरोप लगा रहा है। यदि हम उससे माता-पिता और उसके बीच के सम्बन्धों के विषय में प्रश्न पूछते और उसकी समस्त पारिवारिक परिस्थिति को समझ सकते तो जान पड़ता कि वास्तव में वह क्या अनुभव करता था। अब तो हम इसे केवल इस बात की सम्पुष्टि मान सकते हैं कि उसके माता-पिता सहयोग-रत व्यक्ति नहीं थे।

"इस प्रकार मैंने लगभग एक वर्ष काम किया और तब मैं

एक लड़की के साथ घूमने-फिरने लगा; वह मौज में बिताए जाने वाले समय को खूब पसन्द करती थी।"

हम अपराधियों के जीवन में प्रायः यही पाते हैं—वे एक लड़की से अपना सम्बन्ध गाँठ लेते हैं जो कि मौज का समय बिताना पसन्द करती है। याद करिए कि हमने पहले क्या कहा है—वह एक समस्या के समान है, जिसमें हमारी सहयोग की भावना की परीक्षा हो रही है। वह एक ऐसी लड़की के साथ घूमना-फिरना पसन्द करता है जो मौज चाहती है और इसके पास प्रति सप्ताह पौने दो रुपये ही होते हैं। हम इसे प्रेम की समस्या का ठीक हल नहीं समझते। उदाहरण के लिए कई दूसरी लड़कियाँ भी हो सकती हैं। यह ठीक रास्ते पर नहीं चल रहा, ऐसी परिस्थितियों में मैं होता तो कहता—"यदि यह लड़की मौज ही चाहती है तो मेरे उपयुक्त नहीं है।" जीवन में क्या-कुछ अधिक महत्व रखता है, इसके अनुमान भिन्न-भिन्न होते हैं।

"इन दिनों में............शहर में भी केवल इतने पैसों पर आप एक लड़की को मौज का समय बिताने का अवसर नहीं दे सकते। मेरा बूढ़ा बाप मुझे इससे अधिक कुछ नहीं देता था। मैं दुखी रहता था और सोचा करता था कि मैं किस प्रकार अधिक पैसा बना सकता हूँ।"

इसका युक्तियुक्त उत्तर यह होगा—"आप चारों ओर खोजिए, शायद अधिक पैसे कमाने के लिए कोई और काम मिल जाय।" परन्तु वह तो सब-कुछ आसानी से पाना चाहता है। यदि वह किसी लड़की को साथ लिये रहना चाहता है तो उसकी पसन्द की बात है और कुछ नहीं।

"एक दिन एक व्यक्ति से भेंट हुई और उससे मेरा परिचय बढ़ा।"

जब किसी अपरिचित व्यक्ति से भेंट होती है तो यह उसकी नई परीक्षा है। सहयोग की उचित क्षमता रखने वाले मनुष्य को कोई भी फँसा नहीं सकता। यह लड़का ऐसी राह पर चल रहा है जहाँ पर उसका फँसना सम्भव हो सकता है।

"वह एक बढ़िया आदमी था (अर्थात् एक अच्छा चोर, समझदार और योग्य व्यक्ति था, जो अपने व्यवसाय को भली-भाँति जानता था, यानि 'वह सदा आपका साथ देगा, कभी धोखा नहीं देगा।') हमने मिलकर·········शहर में कितने ही काम किये और पकड़े नहीं गए। तब से मैं सदा वैसा ही करता आया हूँ।"

हमें पता चलता है कि उसके माता-पिता का अपना मकान है। पिता एक कारखाने में बड़े मिस्त्री के पद पर हैं और यह परिवार कठिनता से अपना निर्वाह कर पाता है। यह लड़का तीन सन्तानों में से एक है और इसकी दुष्कृति के दिन तक इस परिवार का कोई सदस्य कुमार्गी नहीं जाना गया था। लड़का स्वीकार करता है कि उसने पन्द्रह वर्ष की आयु में इतरयोनि-सम्भोग का अनुभव किया। मुझे निश्चय है कि कुछ लोग यह कहेंगे कि लड़के की यौन-प्रवृत्ति प्रबल है। परन्तु इस बालक की दिलचस्पी दूसरों में नहीं है; वह तो केवल मौज चाहता है। कोई भी अपने को प्रबल यौन-प्रवृत्ति वाला बना सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। वह इस विषय में प्रशंसा पाने की तलाश कर रहा है, वह यौन-सम्बन्धों में वीर बनना चाहता है। सोलहवें वर्ष में अपने एक साथी के साथ वह दरवाजा तोड़ने, अनधिकार प्रवेश करते और चोरी के अपराध में पकड़ा गया। बाद में और भी बहुत सी दिलचस्प बातें निकलीं जिन्होंने हमारे कथनों की पुष्टि की। वह रूप-प्रदर्शन से विजयी बनना चाहता

है। लड़कियों का ध्यान आकृष्ट करना और उनके लिए व्यय करके उन्हें जीतना चाहता है। वह चौड़े किनारे का टोप पहनता है, गले में लाल बिन्दीदार रुमाल बाँधता है और कमर पर ऐसी पेटी लपेटता है जिससे कि पिस्तौल लटकी रहती है। वह पश्चिम के एक डाकू का नाम अपना लेता है। यह एक मिथ्याभिमानी लड़का है, वीर बनकर दिखाना चाहता है किन्तु और कोई राह नहीं सूझती।

"मेरा विचार है कि जीवन में आकर्षण नहीं है, सारी दुनिया के लिए मेरे मन में गहरी घृणा के सिवा और कुछ नहीं है।"

ये सब चेतन-विचार वास्तव में अचेतन हैं। वह उन्हें समझता नहीं, वह यह नहीं जानता कि शृङ्खलाबद्ध होने के बाद उनका अभिप्राय क्या होगा। ये अनुभव करता है कि जीवन एक भार के समान है, परन्तु यह नहीं समझता कि उसके निरुत्साह का क्या कारण है।

"मैंने लोगों पर विश्वास न करना ही सीखा है। कहते हैं कि चोर आपस में एक-दूसरे को धोखा नहीं देते, परन्तु वे ऐसा करते हैं। मैं एक बार एक साथी के संग था, मैंने उससे बहुत अच्छा व्यवहार किया, परन्तु उसने मुझसे एकदम बुरा बर्ताव किया।"

"यदि मेरे पास जितना चाहता हूँ उतना पैसा हो सके तो मै भी दूसरों की तरह ईमानदार और नेक बन सकता हूँ, अर्थात् मेरे पास इतना पैसा हो जिससे मै बिना कुछ भी काम किये जो भी चाहूँ कर सकूँ। मैंने काम को कभी पसन्द नहीं किया। मैं इससे घृणा करता हूँ, और कभी काम नहीं करूँगा।"

इस अन्तिम बात का हम इस प्रकार भावार्थ निकाल सकते

हैं—"दमन ही मेरे जीवन-क्रम के लिए उत्तरदायी है। मुझे अपनी इच्छाओं को दबाए रखने पर विवश किया जाता है, इसीलिए मैं अपराधी बना हुआ हूँ।" यह एक ऐसी बात है जिस पर पर्याप्त ध्यान देना उचित है।

"मैंने केवल अपराध करने के लिए ही कोई अपराध नहीं किया; निस्सन्देह किसी स्थान पर मोटर पर चढ़कर जाने में, अपना काम पूरा करने और बिना पकड़ाई दिए भाग जाने में भी एक 'रोमांच' होता है।"

उसका विश्वास है कि इसमें वीरता है, वह यह नहीं देख पाता कि यह कायरता है।

"जब मैं पहले एक बार पकड़ा गया था तो मेरे पास लगभग पचास हज़ार रुपये के आभूषण थे, तब जाकर अपनी प्रिया को मिलने के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं सूझा। मैंने केवल उतने आभूषण ही बेचे जो उस लड़की तक पहुँचने के वास्ते और खर्च के लिए जरूरी थे, तभी मैं पकड़ा गया।"

ऐसे लोग अपनी प्रिया पर व्यय करते हैं और इस प्रकार वे उसे बहुत स्थूल ढंग से जीत लेते हैं। परन्तु ये लोग इसे अपनी महाविजय के समान मानते हैं।

"इस कारागार में एक स्कूल भी है—यहाँ पर मैं जितनी भी सम्भव है शिक्षा प्राप्त करूँगा, अपने को सुधारने के उद्देश्य से नहीं, परन्तु अपने को समाज के लिए और अधिक भयानक बनाने के विचार से।"

इस प्रकार का कथन मानव-समाज के प्रति बहुत कड़वे दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है। परन्तु वह तो मानव-समाज से कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहता। वह आगे चलकर कहता है—

"यदि मेरी कोई सन्तान होती तो मैं उसका गला घोंट

देता। क्या आप सोचते हैं कि मैं कभी भी किसी व्यक्ति को इस संसार में जन्म देने का अपराध करूँगा ?"

इस प्रकार के व्यक्ति में सुधार करने का क्या तरीका है ? उसकी सहयोग की योग्यता को उन्नत करने और उसे यह दिखाने के अतिरिक्त कि उसने जीवन के अनुमान में कहाँ गलती की है, और कोई तरीका नहीं है। हम उसे तभी मना सकेंगे जबकि हम उसके आरम्भिक शैशव की भूलों को समझ लें। मैं नहीं जानता कि इस मामले में क्या हुआ। इस वर्णन में उन बातों का कोई उल्लेख नहीं है जिन्हें मैं महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। उसके बचपन में कुछ ऐसा हुआ कि वह मानव का शत्रु बन गया। यदि मुझे अनुमान लगाना पड़े तो मैं कहूँगा कि वह परिवार में सबसे बड़ा बच्चा था; आरम्भ में उससे बहुत लाड-प्यार किया जाता था, जैसा कि बड़े बच्चों से अक्सर किया जाता है। बाद में एक दूसरे बच्चे का जन्म होने पर वह अपने को पदच्युत अनुभव करने लगा। यदि मैं अपने सुझाव में ठीक हूं तो उपर्युक्त छोटी-सी बातों से भी सहयोग का विकास अवरुद्ध हो सकता है।

जॉन ने अपने कथन में यह बात भी कही है कि एक औद्योगिक स्कूल में, जिसमें उसे पढ़ाया जा रहा था, उससे दुर्व्यवहार किया गया। इस पर समाज के प्रति गहरी घृणा लेकर उसने स्कूल छोड़ दिया। इस बात पर भी मैं कुछ कहना चाहता हूं। मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण से कारागार में मिलने वाला प्रत्येक कठोर व्यवहार चुनौती के समान होता है। यह तो शक्ति-परीक्षा की प्रतियोगिता बन जाता है। इसी प्रकार अपराधी जब लगातार यह सुनते हैं—"हमें इस अपराध की हवा को दबा ही देना है।" तो इसे वे एक चुनौती समझते हैं। वे तो वीर बनकर दिखाना चाहते हैं और इस प्रकार चुनौती मिलने

को पसन्द करते हैं। वे इसे एक खेल के समान समझने लगते हैं, समझते हैं कि समाज उनके साहस की परीक्षा कर रहा है और वे अधिक ढिठाई से अपने अपराधमय कार्य जारी रखते हैं। यदि किसी व्यक्ति का यह विचार है कि वह सारी दुनिया से लड़ रहा है तो उसे चुनौती मिलने से अधिक रोमाञ्चित करने वाली कौनसी बात मिलेगी? समस्याजनक बच्चों की शिक्षा में भी सबसे बड़ी भूल उन्हें ऐसी चुनौती देने की होती है, "देखें कौन अधिक मजबूत है, देखें कौन अधिक देर टिका रहता है।" अपराधियों की तरह ऐसे बच्चे भी अपने ताकतवर होने के विचार से उन्मत्त हुए होते हैं और यह भी जानते हैं कि यदि वे पर्याप्त चालाक हों तो पकड़े नहीं जा सकते। सुधार-गृहों में अपराधियों को कभी-कभी चुनौती दी जाती है; इस प्रकार चुनौती देने की यह नीति घातक है।

अब एक ऐसे हत्यारे की डायरी उद्धृत करता हूँ जिसे अपने अपराध के लिए फाँसी का दण्ड मिला। उसने क्रूरता-पूर्वक दो व्यक्तियों की हत्या की और हत्या करने से पहले अपनी इस इच्छा को लिपिबद्ध भी कर दिया। मुझे इससे एक अपराधी के मन में बनाई जाने वाली योजनाओं के वर्णन करने का अवसर भी मिलेगा। एक अपराध को बिना पूर्व-योजना के कार्यान्वित नहीं किया जा सकता और इस योजना में अपराध-मय कृत्य के औचित्य का प्रवेश अवश्य रहता है। इस प्रकार की स्वीकारोक्तियों के समस्त साहित्य में मुझे एक भी उदाहरण नहीं मिला, जहाँ अपराध का वर्णन सरल और स्पष्ट रीति से किया गया हो और मैंने ऐसा भी कोई उदाहरण नहीं पाया जहाँ अपराधी ने अपने को न्यायोचित ठहराने की कोशिश न की हो। यहाँ हमें सामाजिक भावना का महत्त्व दीख पड़ता है। अपराधी को भी अपनी सामाजिक भावनाओं के

अनुसार बनाने का प्रयत्न करना पड़ता है। इसके साथ ही उसे अपराध करने से पहले अपने-आपको अपनी सामाजिक भावना की हत्या करने और सामाजिक दिलचस्पी की दीवार को तोड़-कर बाहर निकलने के लिए तैयार करना पड़ता है। उदाहरण के लिए डोस्टोव्स्की की कहानी में रस्कोलिनकाफ दो महीने लगातार यह सोचता हुआ कि वह अपराध करे अथवा न करे बिस्तर में पड़ा रहता है। वह लगातार इस विचारसे उलझा रहता है—'क्या मैं नेपोलियन हूँ या क्षुद्र कीड़ा ?' अपराधी इस प्रकार की कल्पनाओं से अपने-आपको धोखा और प्रेरणा दिया करते हैं। वास्तव में प्रत्येक अपराधी यह जानता है कि वह जीवन की सार्थक दिशा की ओर नहीं चल रहा और यह भी जानता है कि सार्थक दिशा कौनसी है। किन्तु वह कायरतावश उस ओर बढ़ने से इनकार कर देता है। वह कायर इसीलिए है, क्योंकि उसमें उपयोगी होने की क्षमता का अभाव है, उसके सामने प्रस्तुत समस्याएँ ऐसी समस्याएँ हैं जो उससे सहयोग की अपेक्षा करती हैं, किन्तु उसे सहयोग की शिक्षा ही नहीं मिली। बाद के जीवन में अपराधी अपने इन बोझों को उतार फेंकना चाहते हैं और जैसा कि हमने दिखाया है अपने को न्यायोचित सिद्ध करना और विवशतामय परिस्थितियों के अधीन दिखाना चाहते हैं—'वह बीमार और लफगा था' इस प्रकार की बातें करते हैं।

उस डायरी के उदाहरण इस प्रकार हैं—

"मेरे सब बन्धुओं ने मेरा त्याग कर दिया था, मैं उनकी घृणा और अरुचि का शिकार था, मानो मेरी यातना की गम्भीरता ने मेरा सर्वनाश ही कर दिया था।" उसे नाक में कुछ कष्ट था, "मैं अनुभव करता हूँ कि मैं अब अधिक सहन नहीं कर सकता, जी चाहता है कि मैं चारों ओर से परित्यक्त अपनी

इस दशा में शान्त होकर बैठ जाऊँ, परन्तु इस पेट पर तो किसी का वश नहीं है।"

यहाँ पर वह विवश करने वाली परिस्थिति का वर्णन करता है।

"भविष्यवाणी की गई थी कि मैं फाँसी के तख्ते पर झूलकर मरूँगा, परन्तु विचार आता है कि भूख से मरूँ अथवा फाँसी पर चढ़कर—इसमें फर्क ही क्या है ?"

एक बार एक बच्चे की माँ ने यह भविष्यवाणी की—"मुझे निश्चय है कि एक दिन तुम मुझे गला घोंटकर मार डालोगे।" जब वह बच्चा सत्रह वर्ष का हुआ तो उसने अपनी चाची को गला घोंटकर मार डाला। एक भविष्यवाणी और चुनौती का प्रभाव एक समान ही होता है।

"मैं परिणामों के विषय में बिलकुल लापरवाह हूँ। मैंने तो दोनों दशाओं में मरना ही है, मैं शून्य के बराबर हूँ, कोई भी मुझसे सम्बन्ध बनाये रखना नहीं चाहता, जिस लड़की को मैं चाहता हूँ वह मुझसे दूर-दूर भागती है।"

वह इस लड़की को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था, परन्तु उसके पास बढ़िया कपड़े और रुपया-पैसा नहीं था। वह लड़की को सम्पत्ति के एक टुकड़े के समान समझता था। उसने इसी को प्रेम और विवाह की समस्या का हल सोच रखा था।

"मेरे लिए तो सब एक समान है। मैं अपना उद्धार अथवा सर्वनाश करके ही छोड़ूँगा।"

मैं चाहता था कि इसकी विस्तृत व्याख्या करने का मेरे पास स्थान होता, परन्तु अभी इतना ही कहूंगा कि ऐसे सब लोग उभय-पक्ष की चरम सीमाओं को अथवा विचारों के गम्भीरतम उतार-चढ़ाव को पसन्द करते हैं। इसमें ये बच्चों

के अधीन होते हैं—'सब-कुछ' अथवा 'कुछ भी नहीं' चाहते—'भूख से प्राण-त्याग करना अथवा फाँसी पर चढ़ना', 'उद्धार अथवा सर्वनाश।'

"सब-कुछ वीरवार के लिए आयोजित है, शिकार खोजा जा चुका है। मैं अपने अवसर की ताक में हूँ, जब यह प्रस्तुत होगा तो मैं जो कुछ करूँगा, उसे हर कोई पूरा नहीं कर सकता।"

वह अपने विचार में स्वयं ही वीर बना बैठा है—

"मैं ऐसा भयंकर कृत्य करूँगा जिसे हर कोई नहीं दुहरा सकता।" उसने एक चाकू लिया और अकस्मात् एक आदमी पर आक्रमण करके उसे मार दिया, निश्चय ही ऐसी बात सब कोई नहीं कर सकते।

"जैसे एक गड़रिया अपनी भेड़ों को चलाता है, वैसे ही आदमी को पेट बड़े-से-बड़े दुष्कृत्यों की ओर प्रेरित करता है। शायद मैं इसके बाद किसी दूसरे प्रभात को नहीं देख सकूँगा, परन्तु इसकी कोई चिन्ता नहीं। भूख से प्रताड़ित होना सबसे बुरी बात है। मैं एक असाध्य रोग से पीड़ित हूँ। दुःख की अन्तिम घड़ी तब आएगी जब मेरे मामले का फैसला किया जायगा। आदमी को अपने दुष्कृत्यों का मूल्य चुकाना ही पड़ता है, परन्तु इस प्रकार मरना भूख से मरने से बेहतर है। यदि मैं भूख से प्राण गँवाऊँगा तो कोई भी मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देखेगा, परन्तु अब कितने लोग उपस्थित होंगे। सम्भवतः कोई मेरे लिए दुःख भी प्रकट करेगा। मैं जो निश्चय कर चुका हूँ उसे पूरा करके ही छोड़ूँगा। इस रात मैं जितना डरता रहा हूँ इतना कोई भी आदमी कभी नहीं डरा होगा।"

आखिरकार यह सिद्ध हो गया कि वह अपने को जितना वीर समझता है उतना वीर नहीं है। बहस के दौरान में उसने

कहा—"यद्यपि मैंने शरीर के किसी कोमल भाग पर चोट नहीं पहुँचाई, फिर भी मैंने हत्या की है। मैं जानता हूँ कि मुझे अवश्य फाँसी पर झुलाया जायगा—परन्तु उस व्यक्ति ने इतने बढ़िया कपड़े पहने हुए थे, और मुझे मालूम था कि मेरे पास ऐसे बढ़िया कपड़े कभी भी न होंगे।" अब वह यह नहीं कहता कि उसे प्रेरणा देने का दोष पेट का है, अब कपड़े उसके ध्यान में चढ़ गए हैं। उसने कहा—"मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ।" आप देखेंगे कि यह बात प्रत्येक मामले में कही जाती है। कभी-कभी अपराधी अपराध करने से पहले शराब पीते हैं, जिससे दायित्व की समझ गँवा सकें। इन सबसे यही सिद्ध होता है कि सामाजिक दिलचस्पी की दीवार को तोड़ देने के लिए उन्हें कितना कठोर संघर्ष करना पड़ता है। मेरा विचार है कि मैं हर अपराधमय जीवन के वर्णन में ऊपर स्पष्ट की गई बातों को दिखा सकता हूँ।

अब हमारा सामना वास्तव में इस समस्या से हो रहा है कि हम क्या करें? जो कुछ कहा है यदि मैं उसमें ठीक हूँ और जबकि हम हर अपराध-वृत्ति के जीवन में कृत्रिम वैय-क्तिक श्रेष्ठता के लिए एक ऐसे व्यक्ति के प्रयत्नों को देखते हैं, जिसमें सामाजिक दिलचस्पी का अभाव है और जिसे सह-योग की शिक्षा नहीं मिली तो हमें क्या करना उचित है? ठीक स्नायुरोगी की तरह अपराधी से भी हम तब तक कुछ भी नहीं कर सकते जब तक कि सहयोग के लिए हम उसे जीत न सकें। इस बात पर जितना जोर दिया जा सके थोड़ा है—यदि हम अपराधी की दिलचस्पी को मानव की भलाई के लिए जीत सकें, यदि हम दूसरे मनुष्यों के लिए उसकी दिलचस्पी पा सकें, यदि हम उसे सहयोग के साधन से जीवन-समस्याओं को सुलझाने की ओर अग्रसर कर सकें तो सब-कुछ प्राप्त कर लिया गया।

यदि हम इसमें असफल रहें तो कुछ भी सम्भव नहीं है। यह काम जितना सरल दीखता है उतना सरल नहीं। हम उसे, उसके जीवन को, अधिक सुखद करके भी नहीं जीत सकते, जैसे कि अधिक कठोरता से नहीं जीत सकते। यह सुझाकर कि वह भूल कर रहा है अथवा उससे बहस करके उसे नहीं जीता जा सकता। उसका निश्चय पक्का हो चुका होता है। वह बरसों से दुनिया को इसी दृष्टि से देखता है। यदि हम उसे बदलना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि इस नक्शे की जड़ों को ढूंढ़ें। हमें पता लगाना चाहिए कि उसकी असफलताएँ कब शुरू हुईं और किन परिस्थितियों ने उन्हें उकसाया। तीन अथवा चार वर्ष की आयु तक पहुँचने के साथ ही उसके व्यक्तित्व की मुख्य विशिष्टताएँ अंकित हो चुकी थीं। जिन गलतियों को हम उसके अपराधमय जीवन में स्पष्ट रूप से पाते हैं उस वक्त तक वह उनको अपने अनुमान के अनुसार कर चुका था। हमें इन पिछली भूलों को ही समझना और सुधारना चाहिए, यह आवश्यक है कि हम उसके दृष्टिकोण से प्राचीनतम विकास को समझें।

इसके बाद तो वह अपने हर अनुभव का प्रयोग अपने दृष्टिकोण के औचित्य को सिद्ध करने के लिए करता है। यदि उसके अनुभव उसकी योजनाओं के अनुरूप सिद्ध नहीं होते तो वह उन पर विचार करता है और उन्हें ठोक-पीटकर ऐसा रूप दे लेता है कि वे अधिक उपयुक्त जंचें। यदि एक व्यक्ति का यह दृष्टिकोण हो कि 'दूसरे लोग मेरा दुरुपयोग और अपमान करते हैं' तो वह इसकी सम्पुष्टि पाने के लिए पर्याप्त साक्षी जमा कर सकता है। वह इसी प्रकार की साक्षी की तलाश में रहेगा और दूसरे पक्ष की साक्षी नहीं देख सकेगा। अपराधी की दिलचस्पी तो अपने में और अपने दृष्टिकोण में ही

होती है। उसका देखने और सुनने का ढंग अपना ही होता है और हम प्रायः यही देखेंगे कि जो बातें उसके जीवन के अपने अर्थों के अनुरूप नहीं होतीं वह उनका किंचित् भी विचार नहीं करता। इसलिए जब तक हम उसके द्वारा लगाये सब अर्थों को न समझ लें, अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसकी सब शिक्षा का और इस बात का पता न लगालें कि उसका दृष्टिकोण सर्वप्रथम किस तरीके से शुरू हुआ था, हम उसे इसका निश्चय नहीं करा सकते।

शारीरिक दण्ड क्यों विफल रहता है उसका यह भी एक कारण है। अपराधी को इसमें इस बात की सम्पुष्टि मिलती है कि समाज शत्रुतापूर्ण है और उससे सहयोग असम्भव है। शायद स्कूल के दिनों में उस पर कुछ इसी प्रकार की बीती हो। उसे सहयोग करने के लिए शिक्षित नहीं किया गया था और इसी-लिए वह अपना काम ठीक ढंग से नहीं करता था अथवा श्रेणी में शरारतें करता था। इस पर उसे भला-बुरा कहा जाता और पीटा जाता था। क्या इससे उसे सहयोग करने के लिए उत्साह पैदा होगा? वह तो अनुभव करने लगता है कि स्थिति और भी निराशाजनक है, वह सोचने लगता है लोग उसके विरुद्ध हैं। हममें से कौन व्यक्ति ऐसे स्थान के लिए अभिरुचि दिखला सकता है जहाँ पर उलाहनों और मार-पीट की आशा हो! ऐसे स्थान पर बच्चा शेष बचे विश्वास को भी गंवा बैठता है। अब उसकी दिलचस्पी स्कूल की पढ़ाई, अपने अध्यापकों अथवा अपने सहपाठियों में नहीं रहती। वह स्कूल से भागने लगता है और ऐसे स्थानों पर छिपने लगता है जहाँ उसका पता न चले। ऐसे स्थानों पर उसकी भेंट ऐसे लड़कों से होती है जो इसी राह पर चलने वाले हैं। वे उसे समझते हैं, उसे भला-बुरा नहीं कहते, किन्तु उसकी और प्रशंसा करते हैं, उसकी

महत्वाकांक्षाओं को छेड़ते हैं तथा उसे यह आशा दिलाते हैं कि वह जीवन की निरर्थक दिशा में बढ़कर भी नाम कमा सकता है। क्योंकि उसकी दिलचस्पी जीवन की सामाजिक मांगों में नहीं होती इसलिए वह उन्हें अपना मित्र तथा शेष समाज को अपना शत्रु समझने लगता है। ये लोग भी उसे पसन्द करते हैं और वह स्वयं भी इनमें रहकर अच्छा अनुभव करता है। ऐसी ढंग से हजारों बच्चे अपराधरत गिरोहों में सम्मिलित हो जाते हैं और यदि बाद के जीवन में हम उनसे इसी प्रकार का व्यवहार करें तो वे इसे इस बात की गवाही समझेंगे कि हम उनके शत्रु हैं और केवल अपराधी ही उनके मित्र हैं।

कोई भी कारण नहीं है कि ऐसा बच्चा जीवन के कर्तव्यों के सामने पराजित हो। यह ध्यान रखना उचित है कि वह आशा से विमुख न होने लगे। ऐसा करना बहुत आसान हो सकेगा, यदि हम स्कूलों का संगठन इस तरह करें जहाँ बच्चों को साहस और आत्म-विश्वास दिया जा सके। हम इस प्रस्ताव पर बाद में विचार करेंगे—यहाँ इस उदाहरण का प्रयोग यह दिखलाने के लिए कर रहे हैं कि किस तरह एक अपराधी दण्ड के ऐसे अभिप्राय लगाता है जिससे यह प्रतीत हो कि समाज उसके विरुद्ध है, जैसा कि वह सदा सोचा करता था।

शारीरिक दण्ड दूसरे कई कारणों से भी प्रभावकारी सिद्ध नहीं होता। बहुत से अपराधियों को अपने प्राणों का अधिक मोह नहीं होता। उनमें से कुछ तो जीवन के कुछ क्षणों में आत्म-हत्या के बहुत समीप होते हैं। शारीरिक दण्ड उन्हें भय-भीत नहीं करता। उनकी पुलिस को हराने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि उन्हें जरा चोट भी नहीं पहुँचती। जिस बात को वे चुनौती समझते हैं वह तो उसके प्रत्युत्तर का कुछ अंश ही है। यदि पहरेदार कठोर है अथवा उनसे सख्ती का व्यवहार

किया जाता है तो उनमें विरोध की प्रवृत्ति सजग हो जाती है। इससे एक बार पुनः उनकी इस भावना में वृद्धि हो जाती है कि वे पुलिस से अधिक चालाक हैं। जैसा कि हमने देखा है वे हर बात को इसी रूप में लेते हैं। वे समाज से अपने सम्पर्क को एक सतत संघर्ष के समान मानते हैं, जिस संघर्ष में वे विजय पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि हम भी इसको इसी रूप में समझें तो हम केवल उनके हाथों की कठ-पुतली बन रहे हैं। इस भाव में तो प्राण हरने वाली बिजली की कुर्सी भी एक चुनौती का काम कर सकती है। अपराधी सोचता है कि वह बड़ी बाधाओं से जूझ रहा है, जितनी अधिक सजा मिले अपनी चालाकी दिखाने की उसकी इच्छा उतनी ही प्रबल हो जाती है। यह सिद्ध करना आसान है कि बहुत से अपराधी अपने अपराधों के विषय में इसी ढंग से सोचते हैं। एक अपराधी, जिसे फाँसी की सजा सुनाई जा चुकी हो, अपना समय प्रायः यही सोचते हुए बिताएगा कि वह किस प्रकार पकड़ाई से बच सकता था, "काश कि मैं अपनी ऐनक पीछे न छोड़ आता!"

हमारे पास इसके उपचार का केवल एक ढंग यही है कि अपराधी ने बचपन में सहयोग की राह में जहाँ बाधा पाई है उसका पता करें। यहाँ वैयक्तिक मनोविज्ञान ने हमारे लिए सम्बन्धित अन्धकारमय क्षेत्र को प्रकाशित कर दिया है। अब हम कहीं अधिक स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। पाँच वर्ष की आयु तक एक बच्चे का मन गुंथ चुका होता है, उसके व्यक्तित्व के फैले धागे समेटे जा चुके होते हैं। उसके विकास में वंश-परम्परा और वातावरण ने कुछ हाथ बँटाया है, किन्तु बच्चा अपने साथ इस संसार में जो कुछ लेकर आता है वह विचारणीय नहीं अपितु जो अनुभव वह करता है, जिस तरीके से उन अनुभवों

का प्रयोग करता है और उन्हें उपयोगी बना लेता है तथा उनसे सुलझता है यही अधिक विचारणीय है। यह बहुत आवश्यक है कि हम इस बात को समझ लें, क्योंकि विरासत में प्राप्त की हुई समर्थताओं या असमर्थताओं के विषय में हम वास्तव में कुछ भी नहीं जानते। उसकी परिस्थिति की सम्भावनाओं पर और उस सीमा पर ही, जिसका उसने पूर्ण उपयोग किया है, हमारे लिए ध्यान देना पर्याप्त है।

सब अपराधियों के लिए एक शंस्य बात यह है कि उनमें कुछ मात्रा में सहयोग की भावना होती है, किन्तु इतनी मात्रा में नहीं कि वह हमारी माँगों के लिए पर्याप्त हो। इस विषय में मुख्य दायित्व माता का है। उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि वह इस दिलचस्पी के क्षेत्र को किस प्रकार विकसित करे, अपने तक सीमित दिलचस्पी को किस तरह दूसरे लोगों तक प्रवाहित करे। उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि बच्चा मानव-मात्र में और स्वयं अपने जीवन के भविष्य में दिलचस्पी लेने लगे। परन्तु शायद माता नहीं चाहती कि बच्चा किसी दूसरे में दिलचस्पी ले। शायद उसका विवाहित जीवन सुखद नहीं है, पति-पत्नी परस्पर सहमत नहीं हो सकते—तलाक की बात सोच रहे हैं अथवा एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्यालु हैं। सम्भवतः इसीलिए माता बच्चे को अपने से ही बँधा रखना चाहती है, उसे बिगाड़ती और प्यार-दुलार देती है तथा अपने से स्वतन्त्र होने देना नहीं चाहती। प्रत्यक्ष है कि ऐसी परिस्थिति में सहयोग का विकास संकुचित और सीमित रूप में होगा।

सामाजिक दिलचस्पी के विकास के लिए दूसरे बच्चों में दिलचस्पी का होना भी बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। जब कभी एक बच्चे को माता का पक्षपातपूर्ण व्यवहार प्राप्त होता है तो दूसरे बच्चे उसे अपनी दोस्ती और दिलचस्पी में

शामिल करने की इच्छा नहीं रखते। जब इस परिस्थिति को गलत समझ लिया जाय तो वह एक अपराधमय जीवन का सूत्रपात हो सकता है। यदि एक परिवार में एक बच्चा अधिक गुणवान हो तो उससे अगली सन्तान प्रायः समस्याजनक बन जाती है। उदाहरण के लिए दूसरा बच्चा अधिक सुशील और आकर्षक हो सकता है, इस पर उसका बड़ा भाई अपने को माता-पिता के प्यार से वंचित अनुभव करने लगेगा। ऐसे बच्चे के लिए अपने को धोखा देना और इस विचार के पूर्णतया वशीभूत हो जाना आसान है कि उसकी उपेक्षा की जा रही है। वह अपनी इस धारणा को सत्य सिद्ध करने की साक्षी ढूँढ़ता रहता है। उसका गति-व्यवहार बिगड़ जाता है, परिणामस्वरूप उससे अधिक सख्ती होने लगती है। इससे उसके विचार को और सम्पुष्टि मिल जाती है कि उसे पीछे धकेला और विफल किया जा रहा है। क्योंकि वह अपने को पदच्युत समझने लगा है, वह चोरी करने लगता है, पकड़ा जाता है और उसे सजा मिलती है। अब उसको इस बात की अधिक सम्पुष्टि मिल जाती है कि उसे प्यार नहीं किया जाता और दूसरे लोग उसके शत्रु हैं।

जब कभी माता-पिता अपने बच्चों के सामने बुरे समय और बुरी परिस्थितियों की बातें करें तो वे सामाजिक दिलचस्पी के विकास में बाधक बनने में सहायक हो सकती हैं। यदि वे अपने सम्बन्धियों अथवा पड़ोसियों पर सदा आरोप लगाते रहते हैं अथवा दूसरों की टीका-टिप्पणी में प्रवृत्त रहते हैं या बुरी भावनाओं व पक्षपात का प्रदर्शन किया करते हैं तब भी ऐसा ही कुछ होना सम्भव है। यदि बच्चे ऐसी दशा में अपने साथी, पड़ोसी और सम्बन्धियों के विषय में विकृत दृष्टिकोण लेकर बड़े हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। अन्त

में यदि वे अपने माता-पिता के भी विरुद्ध हो जायँ तो भी कुछ आश्चर्य नहीं। जब कभी सामाजिक दिलचस्पी अवरुद्ध हो जाती है तो केवल अहम्मन्यता का दृष्टिकोण ही शेष बचता है। बच्चा अनुभव करता है, "मैं दूसरे लोगों के लिए कुछ भी क्यों करूँ ?" और क्योंकि वह मानसिक अवस्था में जीवन की समस्याओं को सुलझा नहीं सकता, निश्चय है कि वह हिचकिचाएगा, इनसे बच निकलना चाहेगा अथवा इन्हें सुलझाने की सरल राह खोजेगा। वह संघर्ष करने को बहुत अधिक कठिन बात समझेगा और यदि इससे दूसरों को चोट पहुँचे तो उपेक्षा-वृत्ति दिखायगा। वह यही कहेगा, "यह तो एक युद्ध है और युद्ध में हर बात समुपयुक्त होती है।"

अब मैं कुछ ऐसे उदाहरण दूँगा, जिनमें आप अपराध-मय प्रवृत्ति के विकास को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। एक परिवार में दूसरा बच्चा एक समस्याजनक बच्चा था। जहाँ तक मैं देख सकता था वह काफी स्वस्थ था और उसमें कोई वंश-परम्परा प्राप्त कठिनाई नहीं दीखती थी। सबसे बड़ा बच्चा परिवार का लाडला बच्चा था और छोटा भाई हर वक्त इस प्रयत्न में रहता था कि उसकी सफलताओं को पा सके। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी प्रतियोगिता में भाग ले रहा हो तथा अपने से आगे और तेज चलने वाले को हरा देना चाहता हो। उसकी सामाजिक दिलचस्पी में विकास नहीं हुआ। वह बहुत सीमा तक अपनी माता पर ही आश्रित रहना चाहता था और चाहता था कि जो कुछ भी सम्भव हो अपनी माता से ही प्राप्त करे। प्रतिद्वन्द्विता में अपने बड़े भाई से आगे निकलना एक कठिन बात थी। उसका भाई स्कूल में अपनी श्रेणी में सर्वप्रथम रहता था जबकि वह स्वयं सबसे पीछे रहता था। दूसरों पर प्रभुत्व जमाने और शासन करने की उसकी

इच्छा स्पष्ट रूप से दीख पड़ती थी। वह घर की एक पुरानी सेविका को हुक्म दिया करता था तथा एक सिपाही की तरह उसे एक कमरे में चलाया व ड्रिल कराया करता था। वह सेविका उससे स्नेह रखती थी और वह उसको बीस वर्ष की आयु तक इसी प्रकार एक फौजी अफसर बनकर खेलने देती रही। वह सदा करणीय बातों से अत्यधिक चिन्तित और प्रभावित रहता था, किन्तु इसके साथ ही वह कर कुछ भी नहीं पाता था। कभी कठिनाई में होने पर वह सदा अपनी माता से रुपया-पैसा ले सकता था। यद्यपि इस व्यवहार के लिए उसकी आलोचना की जाती थी तथा उलाहने दिये जाते थे। उसने एका-एक विवाह कर लिया और इस प्रकार अपनी सब कठिनाइयों को बढ़ा लिया। परन्तु उसे एक बात की ही सन्तुष्टि थी कि उसने अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह कर लिया है। वह इसे अपनी महान विजय के रूप में देखता था। यह इस बात की साक्षी है कि उसका अनुमान अपने विषय में कितने निचले दर्जे का था, वह इस प्रकार की व्यर्थ बातों में विजयी बनना चाहता था। वह विवाह के लिए अच्छी तरह तैयार नहीं था, परिणामस्वरूप वह और उसकी स्त्री हमेशा झगड़ते रहते थे। जब उसकी माता पहले की तरह उसकी सहायता करने में अशक्य हो गई तो वह बिना पैसा चुकाए पियानो लाने लगा और उन्हें बेचना शुरू किया। इस अपराध के कारण उसे कारागार का दण्ड मिला। इस इतिहास में हमें पिछले जीवन-यापन के अंकुर शुरू बचपन में ही फूटते दिखलाई देते हैं। बड़े भाई के प्रभुत्व की छाया में बड़ा हुआ—एक छोटे वृक्ष की तरह जो एक बड़े वृक्ष की छाया में पले और बड़ा हो। उसने अपने मन में यही विचार और प्रभाव सँजोये कि अपने सुशील स्वभाव के बड़े

भाई की तुलना में वह सदा अपमानित और उपेक्षित किया जाता है।

मैं दूसरा उदाहरण एक बारह वर्ष की लड़की का दूँगा जो बड़ी आकांक्षापूर्ण थी और माता-पिता के लाड-प्यार द्वारा बिगाड़ी जा चुकी थी। उसकी एक छोटी बहन थी जिसके प्रति वह बहुत ईर्ष्यालु थी। उसकी स्पर्द्धा घर और स्कूल दोनों स्थानों पर व्यक्त होती थी। वह हर वक्त ऐसे उदाहरणों की तलाश में रहती थी जबकि उसकी बहन से पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता था, अधिक मिठाई व अधिक पैसे मिलते थे। एक दिन उसने अपने साथ पढ़ने वाली लड़की की जेब से पैसे चुराए, पकड़ी गई और उसे सजा मिली। सौभाग्यवश मैं उसे सारी परिस्थिति का अर्थ समझाने और इस विचार से उन्मुक्त करने में कि वह अपनी छोटी बहन से प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकती, सफल हुआ। साथ-ही-साथ मैंने उस परिवार के सामने इस परिस्थिति की विवेचना की। वे उस प्रतियोगिता को और इस सन्देह को कि छोटी बहन के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है, समाप्त करने में सफल हुए। यह बीस वर्ष पहले की बात है। वह लड़की अब बहुत ईमानदार स्त्री है, विवाहिता है और उसकी एक सन्तान भी है। उस वक्त से अब तक उसने अपने जीवन में कोई बड़ी भूल नहीं की।

हम उस परिस्थिति का पहले ही अवलोकन कर चुके हैं, जिसमें बच्चों के विकास को खतरा पैदा हो सकता है। परन्तु मैं उन्हें फिर यहाँ एक बार दोहराना चाहता हूँ। हम उन पर विशेष जोर देना चाहते हैं क्योंकि यदि वैयक्तिक मनोविज्ञान के निष्कर्ष ठीक हैं तो एक अपराधी के दृष्टिकोण पर ऐसी परिस्थितियों के प्रभाव समझकर ही हम उसे सहयोगमय सक्रियता की ओर बढ़ने के लिए सहायता पहुँचा सकते हैं। विशेष

कठिनाइयाँ उत्पन्न करने वाले बच्चों के तीन मुख्य प्रकार हैं—एक विकृत और अपूर्ण अंगों वाले बच्चे, दूसरे लाड-प्यार से बिगड़े तथा तीसरे उपेक्षित बच्चे। विकृत अंगों वाले बच्चे अपने को प्रकृति द्वारा अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों से वंचित मानने लगते हैं, और जब तक उनकी दिलचस्पी को दूसरों की ओर आकर्षित न किया जाय तो वे अपने में ही साधारण से अधिक तल्लीन रहने की प्रवृत्ति दिखलाएँगे। वे दूसरों पर शासन करने का अवसर खोजते रहते हैं। मेरे देखने में एक ऐसा मामला आया है जबकि एक लड़के ने, जो कि एक लड़की द्वारा अपनी प्रेम-याचना अस्वीकृत किये जाने पर अपने-आपको अपमानित समझता था, अपने से छोटे और अधिक मूर्ख लड़के को उस लड़की की हत्या कर देने पर राजी कर लिया। लाड-प्यार से बिगड़े बच्चे अपने को बिगाड़ने वाले माता-पिता के साथ ही चिपटा करते हैं, वे अपनी दिलचस्पी को शेष दुनिया तक नहीं फैला सकते। किसी भी बच्चे की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि ऐसी उपेक्षा होने पर तो वह अपने बचपन के पहले महीनों में ही जीवित नहीं रह सकता। परन्तु जिन बच्चों को हम उपेक्षित कह सकते हैं वे अनाथ और सङ्कर बच्चे अनिच्छित, कुरूप व विकृतांग बच्चों में मिलते हैं। अब यह आसानी से समझ आ जायगा कि हमें अपराधियों में दो विशेष भेद मिलते हैं—कुरूप और उपेक्षित, रूपवान और लाड-प्यार से बिगाड़े गए।

मैंने अपराध-रत व्यक्तित्व के निर्माण को, उन अपराधियों में जिनके कि मैं संपर्क में आया हूँ और अपराध के उस वर्णन में जिसे मैंने पुस्तकों और समाचार-पत्रों में पढ़ा है, समझने का प्रयत्न किया है। मैंने सदैव यह पाया है कि वैयक्तिक मनो-विज्ञान का माध्यम उन परिस्थितियों को समझने में हमारा

सहायक हो सकता है। अब मैं ऐण्टन वान फ्यूयरबाच द्वारा लिखित जर्मन-भाषा की एक पुरानी पुस्तक में से कुछ और उदाहरण चुनूँगा। यहाँ मैं सरसरी तौर से यह भी कह दूँ कि अक्सर पुरानी पुस्तकों में ही मैंने अपराध-मनोविज्ञान के सर्वोत्तम उदाहरण पाये हैं।

(१) कानराड के० का मामला जिसने एक नौकर की सहायता से अपने पिता की हत्या की। पिता इस लड़के की उपेक्षा किया करता था और उससे क्रूरतापूर्वक व्यवहार किया करता था तथा सारे परिवार की कुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। एक बार लड़के ने पिता की मार का उत्तर मार में दिया, तब पिता ने लड़के पर अदालत में मुकद्दमा चला दिया। न्यायाधीश ने कहा, "तुम्हारा पिता दुष्ट और झगड़ालू है. मुझे तो कोई भी राह नहीं सूझती।" आप देखें कि किस प्रकार न्यायाधीश ने स्वयं ही बच्चे के सामने एक कारण प्रस्तुत कर दिया। उस परिवार ने अपने कष्टों के निवारण की असफल कोशिश की। उनका सामना एक कठिन समस्या से था और वे प्रायः निराश हो चुके थे। पिता एक कुख्याति-प्राप्त स्त्री को ले आया और उसे अपने साथ घर में रखने लगा। उसने अपने लड़के को घर से निकाल दिया। लड़के का परिचय दिन में काम करने वाले एक मजदूर से हो गया, जिसे मुर्गियों की आँखें निकालने की धुन सवार रहा करती थी। मजदूर ने लड़के को सुझाया कि वह अपने पिता की हत्या कर दे। पहले तो वह अपनी माता का विचार करके हिचकिचाया, परन्तु स्थिति बिगड़ती ही गई। लम्बे सोच-विचार के बाद लड़का इसके लिए सहमत हो गया और उसने उस मजदूर की सहायता से अपने पिता को मार दिया। यहाँ स्पष्ट है कि किस प्रकार लड़का अपनी सामाजिक दिलचस्पी को अपने पिता तक भी न फैला सका था। उसका

सम्बन्ध अब तक अपनी माता से बहुत गहरा था और वह उसका बड़ा आदर करता था। इससे पूर्व कि वह शेष सामाजिक दिलचस्पी को अपना सकता, उसे किसी विशेष प्रेरक परिस्थिति के प्रस्ताव की आवश्यकता थी। क्रूरता में संलग्न रहने वाले उस मजदूर का सहारा पाकर ही वह अपने को इतना उन्मत्त कर सका कि इस विषम अपराध को कार्यान्वित कर पाया।

(२) मार्गरेट ज्वैंजिगर, जिसे 'विष देकर मारने वाली प्रसिद्ध हत्यारी' कहा जाता था, दूसरों के दान-पुण्य पर पली थी। कद में छोटी और बेढब। इसीलिए, जैसा कि वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक कहेंगे, उसने व्यर्थ दम्भ और दूसरों का ध्यान आकर्षित करने की उत्सुक रहने की विशेष प्रेरणा पाई थी। वह अत्यधिक मात्रा में विनम्र थी। अपने विविध उपक्रमों के बाद, जिनके कारण उसका सारा परिवार बहुत दुखी हो चुका था, उसने तीन बार स्त्रियों को इस आशा से विष देने की कोशिश की कि उनके पतियों को वह स्वयं हथिया सकेगी। वह अपने को वंचिता अनुभव किया करती थी और उसे आत्म-सम्मान पाने का कोई दूसरा रास्ता नहीं सूझ पड़ता था। इन पुरुषों को हस्तगत करने के अभिप्राय से उसने गर्भवती होने का बहाना किया और आत्म-हत्या तक करने का प्रयत्न किया। अपनी आत्म-कथा में (कितने ही अपराधी अपनी आत्म-कथा लिखने में विशेष आनन्द पाते हैं) उसने लिखा, "मेरे लिए कभी कोई दुखी नहीं होता, यदि मैं दूसरों को दुखी करूँ तो मुझे इसकी चिन्ता क्यों हो?"

हमें इन शब्दों से मालूम पड़ेगा कि वह किस प्रकार अपराध के लिए अपने को उकसाती है, प्रेरित करती है और उपयुक्त परिस्थिति और कारणों को गढ़ लेती है। जब कभी

भी मैं सहयोग और दूसरों में दिलचस्पी के प्रस्ताव को रखता हूँ तो उत्तर में मुझे प्रायः यही बात कही जाती है, "परन्तु दूसरे तो मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते।" मेरा उत्तर सदा यह होता है, "किसी ने तो आरम्भ करना ही है, यदि दूसरे सहयोग-प्रवृत्ति नहीं दिखाते तो आपकी जिम्मेवारी नहीं है। मेरी सलाह यह है कि आप शुरू कर दें और इस बात की चिन्ता न करें कि दूसरे लोग सहयोगी हैं या नहीं।"

(३) एन० एल० परिवार में सबसे बड़ा लड़का गलत तरीकों से पाला गया। वह एक पैर से लंगड़ा था। उसने पिता के बाद अपने छोटे भाई के लिए पिता का स्थान लिया। हम देख सकते हैं कि यह सम्बन्ध भी श्रेष्ठता के ध्येय के समान था, जो शायद अब तक जीवन की सार्थक दिशा की ओर निर्दिष्ट था; शायद यह अभिमान और रौब जमाने की इच्छा का प्रतीक रहा हो। कुछ समय के बाद उसने अपनी माँ को भीख माँगने के लिए यह कहते हुए घर से निकाल दिया, "निकल जाओ यहाँ से, जानवर!" हमें इस लड़के पर अफसोस हो सकता है—इसकी दिलचस्पी अपनी माता तक में भी नहीं थी। यदि हम उसे बचपन के दिनों में जानते तो देख सकते थे कि वह किस प्रकार अपराधमय जीवन की ओर बढ़ रहा है। काफी दिन वह बेकार रहा, उसके पास पैसा नहीं था। वह एक रतिज रोग से ग्रस्त हो गया। एक दिन काम की खोज में असफल होकर जब वह घर लौट रहा था तो उसने अपने छोटे भाई की थोड़ी-सी आय पर कब्जा करने के लिए उसकी हत्या कर दी। उसके सहयोग की सीमाएँ स्पष्ट हैं—कोई काम नहीं, कोई पैसा नहीं, रतिज रोग। ऐसे व्यक्तियों के आगे सदैव उन सीमाओं की रुकावट रहती है, जिन्हें पार करने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं।

(४) एक बच्चा, जो बहुत छोटी आयु में ही अनाथ हो गया

एक उपमाता को सौंप दिया गया, जिसने उसे बेहद बिगाड़ दिया। इस प्रकार वह लाड-प्यार से बिगड़ा बच्चा बना। बाद के वर्षों में उसका विकास बुरे ढंग से हुआ। वह अपने व्यवसाय में बड़ा चालाक था, हर समय दूसरों को प्रभावित करने की ताक में रहता था, हर वक्त सबसे आगे रहना चाहता था। उसकी उपमाता उसे प्रोत्साहित करती रहती थी, मानो वह उसके प्रेम में डूब गई हो। यह झूठा और धोखेबाज बन जाता है और जहाँ कहीं से भी सम्भव हो पैसे बटोरता रहता है। उसके नये माता-पिता काफी धनाढ्य स्थिति के आदमी हैं। वह भी धनवालों की भावभंगी अपना लेता है; उनका पैसा व्यर्थ गँवाने लगता है और उन्हें घर से निकाल बाहर करता है। गलत शिक्षा और अत्यधिक लाड-प्यार ने उसे ईमानदारी से काम करने योग्य नहीं रहने दिया। वह जीवन में अपने कर्तव्य को ऐसा मानने लगता है जैसे झूठ बोलकर और धोखा देकर उसने सबसे आगे ही बढ़ना है। इससे वह प्रत्येक व्यक्ति को अपना शत्रु समझने लगता है जिसे हराना ही है। उसकी उपमाता उसे अपने बच्चों से और स्वयं अपने पति से अधिक पसन्द करने लग गई थी। इस व्यवहार ने उसमें यह विचार जमा दिया कि हर एक चीज पर उसका अधिकार है। परन्तु उसका अपने विषय में ही अनुमान कितना नीचे दर्जे का है वह इस बात से स्पष्ट हो जायगा कि वह अपने लिए साधारण तरीकों से सफल होना सम्भव नहीं समझता।

हमने पहले ही कहा है कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि कोई बच्चा इस प्रकार साहसहीन अनुभव करे, इस प्रकार के गहरे हीन-भाव से पीड़ित हो कि वह सहयोग को व्यर्थ बात समझे। जीवन की समस्याओं के सामने किसी मनुष्य को पराजित नहीं होना चाहिए। अपराधी गलत साधनों को अपना

लेता है; हमें उसे दिखाना है कि वह गलत साधन उसने कहाँ और क्यों अपनाए और उसे दूसरों में दिलचस्पी लेने और उनसे सहयोग करने के लिए साहस में शिक्षित करना है। यदि सब जगह पूर्ण रूप में यह जान लिया जाय कि अपराध करना कायरता की बात है, वीरता की नहीं तो मेरा विश्वास है कि अपराधियों से सबसे बड़ी न्यायोचितता छीन ली जायगी और भविष्य में कोई बच्चा अपने को अपराध-वृत्ति के लिए अभ्यस्त नहीं करेगा। अपराध-वृत्ति के सब मामलों में चाहे उनका वर्णन ठीक हुआ हो अथवा नहीं हम एक गलत जीवन-प्रणाली के बचपन का, एक ऐसी प्रणाली का जो सहयोग की क्षमता का अभाव दरशाती हो, प्रभाव देख सकते हैं। मैं यह कहना चाहूँगा कि सहयोग की इस क्षमता का तो विशेष अभ्यास होना आवश्यक है। इसके वंश-परम्परागत होने का तो प्रश्न ही नहीं है। सहयोग करने की एक सम्भावना अवश्य होती है और इस सम्भावना को निश्चय ही जन्मजात समझना चाहिए; परन्तु सभी मानवों में यह सम्भावना एक समान होती है, और विकसित होने के लिए इसका विशेष अभ्यास करना आवश्यक है। जब तक हम ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत न कर सकें, जिन्हें सहयोग की शिक्षा तो मिली थी किन्तु फिर भी अपराधी बन गए, अपराध के विषय में शेष सभी दृष्टिकोण मुझे अनावश्यक जान पड़ते हैं। मैंने कभी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा और न किसी ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जिसने ऐसे व्यक्ति को देखा हो। अपराध के विरुद्ध उचित संरक्षण तो सहयोग की उचित मात्रा में ही है। जब तक इस सत्य को पहचाना नहीं जाता तब तक हम अपराध की महा-दुर्घटना से बचे नहीं रह सकते। सहयोग की शिक्षा उसी तरह दी जा सकती है जिस तरह भूगोल की शिक्षा, क्योंकि यह एक सत्य है और सत्य की शिक्षा सदा दी

जा सकती है। यदि किसी बच्चे अथवा किसी वयस्क की ऐसी परिस्थितियों में परीक्षा ली जाय जिनमें सहयोग की आवश्यकता होती है तो वह असफल हो जायगा। इसी प्रकार यदि किसी बच्चे अथवा वयस्क की भूगोल में परीक्षा ली जाय और वह इसके लिए तैयार न हो तो वह अनुत्तीर्ण हो जायगा। हमारी सब समस्याओं के लिए सहयोग का ज्ञान आवश्यक है।

अब हम अपराध की समस्या की वैज्ञानिक छानबीन समाप्त कर चुके हैं; अब हममें सचाई को सामने करने के लिए उपयुक्त साहस होना चाहिए। सहस्रों वर्षों के बाद भी मनुष्य अब तक इस समस्या से सुलझने का तरीका नहीं खोज पाया। जिन साधनों का अब तक प्रयोग हुआ है, वे सभी निरर्थक जान पड़ते हैं और इस दुर्घटना से अब तक हमारा पीछा नहीं छूटा। हमारे अन्वेषण ने हमें इसके कारण से अवगत करा दिया है। अपराध-प्रवृत्त जीवन-प्रणाली को बदलने और गलत जीवन-प्रणालियो के विकास को रोकने के लिए कभी ठीक कदम नहीं उठाया गया। इसके अतिरिक्त और कोई साधन वास्तव में प्रभावशाली नहीं हो सकता।

हम अपने निष्कर्षों पर एक बार पुनः दृष्टि दौड़ा लें—हमने देखा है कि अपराधी मनुष्य-जाति से भिन्न कोई व्यक्ति नहीं होता, वह सबके समान ही होता है और उसका व्यवहार मानव-व्यवहार का ही एक भिन्न प्रकार होता है। यह निष्कर्ष बड़े महत्व का है। यदि हम यह समझ लें कि अपराध अपने में ही कोई पृथक् चीज नहीं है, वरन् जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण का लक्षण है और यदि हम यह समझ सकें कि यह दृष्टिकोण क्योंकर पैदा होता है तो अपने सामने एक असाध्य समस्या के प्रस्तुत होने की जगह हम इस विश्वास से आगे बढ़ सकते हैं कि हम परिवर्तन करने में अवश्य ही सफल हो सकेंगे।

हमने देखा है कि अपराधी ने अपने को असहयोगी विचारों और कृतियों में देर तक अभ्यस्त किया है और सहयोग के इस अभाव के अंकुर उसके आरम्भिक बचपन में, उसके जीवन के पहले चार अथवा पाँच वर्षों में उगते देखे जा सकते हैं। उन वर्षों में उसकी दूसरों में दिलचस्पी के विकास में कहीं बाधा पड़ गई। हमने यह वर्णन किया है कि किस प्रकार इस बाधा का सम्बन्ध उसकी माता से, पिता से, उसकी परिस्थिति की कठिनाइयों से और इसी प्रकार की दूसरी बातों से होता है। हमने देखा है कि अपराधियों की सब प्रकार की बड़ी-बड़ी किस्मों में और शेष सब प्रकार की असफलताओं में भी सामी बात यही सहयोग का अभाव, दूसरों में और मानव की भलाई में दिलचस्पी का ऐसा ही अभाव, होता है, और यदि इस सम्बन्ध में हमें कुछ भी करना अभीष्ट है तो सहयोग की क्षमता का अभ्यास कराना चाहिए व शिक्षा देनी चाहिए। उत्तम परिणामों तक पहुँचने का इसके सिवा कोई मार्ग नहीं है। सब-कुछ केवल इसी बात पर, सहयोग करने की इसी सामर्थ्य पर, आश्रित है।

दूसरे प्रकार के असफल व्यक्तियों से अपराधी एक बात में भिन्न होता है। वह सहयोग के विरुद्ध अपने निरन्तर और पुराने अभ्यास से दूसरों की तरह ही जीवन के साधारण कर्तव्यों में सफलता पाने की आशा गँवा बैठता है, किन्तु इसके बावजूद वह कुछ सक्रियता को बचा लेता है तथा सक्रियता के इस अवशेष को जीवन के निरर्थक भाग की ओर निर्दिष्ट कर देता है। वह निरर्थक दिशा की ओर काफी सक्रिय होकर काम करता है और कुछ हद तक इस ओर अपने जैसे लोगों के साथ, अपनी प्रकार के दूसरे अपराध-रत व्यक्तियों के साथ, सहयोग भी कर सकता है। इस बात में स्नायुरोगी, आत्मघाती और

शराबी से उसका भिन्न व्यवहार होता ह, किन्तु उसकी क्रिया-शीलता का क्षेत्र बहुत सीमित होता है। कभी-कभी वह अपराध के सिवा और कुछ भी नहीं कर सकता, अपराध भी सब प्रकार नहीं केवल एक ही तरह का जिसे वह बार-बार दुहराता रहता है। उसकी सक्रियता के संसार का यही घेरा होता है; वह इसी संकीर्ण क्षेत्र में बँधा और फँसा रहता है। हमें उसकी इस अवस्था से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें साहस का कितना अभाव है। साहस का अभाव होना अवश्यम्भावी है, क्योंकि साहस तो सहयोग की क्षमता का ही एक भाग होता है।

एक अपराधी हर समय अपने विचारों और भावनाओं को अपनी अपराध-वृत्ति के लिए तैयार करता रहता है; बची-खुची सामाजिक दिलचस्पी को तोड़ देने की कोशिश में वह दिन को योजनाएँ बनाता है और रात को स्वप्न देखता है। जो कारण उसे अपराधी बनने के लिए मजबूर कर रहे हैं उनकी, अन्य बहानों और औचित्य की तथा उपयुक्त परिस्थितियों की, वह हर समय तलाश में रहता है। सामाजिक भावना की दीवार को भेद देना आसान नहीं है, उससे काफी कठोर विरोध प्रदर्शित होता है, परन्तु यदि उसने अपराध करना है तो उसे इसका रास्ता भी खोजना होगा—शायद वह अपने दुर्भाग्य के विषय में अत्यधिक सोचता रहेगा और इस बाधा से पार पाने के लिए सम्भवतः कभी मदोन्मत्त हुआ करेगा। इससे हमें यह समझने में आसानी होगी कि वह किस प्रकार अपनी परिस्थितियों के विशिष्ट अर्थ लगाता रहता है जो उसके दृष्टिकोण की सम्पुष्टि कर सकें। इससे यह समझने में भी सहायता मिलती है कि हम कभी क्यों उनसे विवाद करके कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। वह संसार को अपनी ही आँखों से देखता है और जीवन-पर्यन्त इकट्ठी की हुई युक्तियों और तर्क से सुसज्जित होता है। जब

तक हमें यह न पता चल जाय कि इस दृष्टिकोण का विकास क्योंकर हुआ, हम इसमें परिवर्तन करने की आशा नहीं कर सकते। एक बात में हम उससे अधिक लाभान्वित स्थिति में होते हैं। उसमें वह हमसे प्रतियोगिता नहीं कर सकता। यह बात हमारी दूसरों में दिलचस्पी है, जो हमें उस असली राह को खोजने के लिए प्रेरित करेगी जिसके द्वारा हम उसे सहायता पहुँचा सकते हैं।

एक अपराधी कठिनाई में होने पर, जब उसे इस कठिनाई का सहयोग के ढंग से सामना करने का साहस नहीं होता और वह इसका कोई सरल हल ढूँढ़ना चाहता है, तो अपराध की योजना और तैयारी करना शुरू कर देता है। उदाहरण के लिए ऐसा विशेषतया तब होता है जब कि पैसा बनाने की आवश्यकता से उसका सामना हो। शेष सब मनुष्यों की तरह वह भी सुरक्षा और श्रेष्ठता के ध्येय की खोज में है। उसकी इच्छा कठिनाइयों और बाधाओं से पार पाने की है, किन्तु उसके प्रयत्न समाज द्वारा निर्धारित दायरे से बाहर होते हैं। उसका ध्येय एक काल्पनिक-वैयक्तिक श्रेष्ठता का ध्येय है और वह इसे पुलिस, कानून और समाज के संगठन पर विजयी अनुभव करके प्राप्त करने की कोशिश करेगा। यह एक ऐसा खेल है, जिसे वह अपने साथ खेल रहा है—कानून तोड़ना और पकड़े जाने से बचे रहना, इतना चालाक होना कि किसीको उसका पता न चले। उदाहरण के लिए उसका विश्वास होगा कि विष की शीशी का प्रयोग करना एक भारी वैयक्तिक जीत है, और वह इसी विचार से अपने को धोखा देता रहेगा तथा उन्मत्त बना रहेगा। पहली बार सजा पाने से पहले साधारणतया उसे कुछ सफलता भी मिलती है और पकड़े जाने पर उसका यही विचार

होता है, "यदि मैं कुछ अधिक चालाकी से काम लेता तो बचकर निकल सकता था।"

इस सबमें हम उसके हीन-भाव को देख सकते हैं। वह मेहनत-मजदूरी करने की दशा से और दूसरों से सम्पर्कयुक्त जीवन के कर्तव्यों को निभाने से डर रहा है। उसका विचार है कि वह साधारण सफलता प्राप्त करने में असमर्थ है। सहयोग से विमुख शिक्षा व अभ्यास ने उसकी कठिनाइयों में सच ही वृद्धि की है। अपराधियों का अधिकांश अदक्ष मजदूरों का होता है। वह अपनी अपर्याप्तता के भावों को एक घटिया श्रेष्ठ-भाव का विकास करके छिपा लेता है। वह सोचता है कि वह कितना बहादुर और कितना असाधारण है, परन्तु क्या हम ऐसे व्यक्ति को बहादुर कह सकते हैं जो जीवन के मोर्चे से भाग चुका हो? वास्तव में एक अपराधी अपना जीवन एक स्वप्न की अवस्था में बिता रहा होता है, वह वास्तविकता से परिचित नहीं होता। उसे चेतन अवस्था की वास्तविकता से संघर्ष करना ही पड़ता है अथवा उसे अपनी वृत्ति का त्याग करना पड़ेगा। इसलिए हम उसे यह सोचता पाते हैं, "मैं दुनिया में सबसे अधिक ताकतवर मनुष्य हूँ, क्योंकि मैं हर किसीको गोली से उड़ा सकता हूँ।" अथवा "मैं बाकी सब मनुष्यों से अधिक चालाक हूँ क्योंकि मैं बिना पकड़े गए अपराध कर सकता हूँ।"

हमने अपराध-प्रवृत्ति के मुख्य कारणों को भी पहचान लिया है—किस तरह अपराधी उन बच्चों में से बनते हैं जिन पर अपने जीवन के पहले वर्षों में अधिक बोझ पड़ा, अथवा जिन बच्चों ने बहुत लाड-प्यार पाया और जो बिगाड़ दिये गए। जो बच्चे विकृत अंग से पीड़ित होते हैं उनकी दिलचस्पी दूसरों की ओर घुमाने के लिए विशेष ध्यान की आवश्यकता है; अन्यथा उनकी दिलचस्पी स्वयं अपने में ही बँधी रहेगी और

वे उचित ढँग से विकास नहीं कर सकेंगे। उपेक्षित बच्चे, अनिच्छित, अप्रशंसित अथवा घृणा-पात्र बच्चे इसी स्थिति में होते हैं। उन्होंने दूसरों के सहयोग का कभी अनुभव नहीं किया होता; उन्होंने यह नहीं जाना होता—कभी पसन्द किया जाना, प्यार पाना और असहयोग से समस्याओं का हल करना भी सम्भव होता है। अत्यधिक लाड-प्यार से बिगड़े बच्चों को यह नहीं सिखाया गया कि अपने प्रयत्नों से भी वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। वे सोचते हैं कि इतना कुछ ही काफी है कि वे कुछ चाहें; उनकी चाह और माँगों को पूरा करने के लिए संसार को तुरन्त तत्परता दिखानी चाहिए। यदि उनकी इच्छा की हर चीज उन्हें नहीं दी जाती तो वे सोचते हैं कि उनसे दुर्व्यवहार हो रहा है, और वे सहयोग करने से इनकार कर देते हैं, हर अपराधी के जीवन के आरम्भ में हम इसी प्रकार का इतिहास खोज सकते हैं। उन्हें सहयोग के लिए शिक्षित नहीं किया जाता, वे इसके लिए अब तक समर्थ नहीं हो पाए और जब कभी उनका सामना समस्याओं से हो उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि इनसे क्योंकर उलझा जाय। अय हम ठीक समझ गए कि हमें क्या करना उचित है। हमें चाहिए कि उन्हें हम सहयोग के लिए शिक्षित और अभ्यस्त करें।

हमारे पास आवश्यक ज्ञान है और अब तक तो पर्याप्त अनुभव भी हो चुका है। मुझे पूर्ण निश्चय है कि वैयक्तिक मनोविज्ञान हमें हर एक अपराधी में परिवर्तन करने का तरीका सुझाता है। परन्तु सोचिए कि यह कितना असाध्य काम होगा, यदि हम प्रत्येक अपराधी को लें और उसकी जीवन-प्रणाली को बदलने के उद्देश्य से उसका उपचार करें। दुर्भाग्यवश हमारी सभ्यता में सहयोग की अपनी क्षमता को, कठिनाइयों के एक निश्चित सीमा से बढ़ जाने के बाद अधिकांश मनुष्य गँवा बैठते

हैं और हम देखते हैं कि कठिन समयों में अपराधियों की संख्या में सदा वृद्धि हो जाती है। मुझे विश्वास है कि हम यदि इस ढँग से अपराध के उन्मूलन में संलग्न हों तो हमें मनुष्य-जाति के एक बहुत बड़े भाग का उपचार करना पड़ेगा। मैं नहीं जानता कि हर अपराधी और अपराधरत होने की सम्भावना वाले हर व्यक्ति को अच्छा मानव-साथी बना लेने का उद्देश्य कहाँ तक क्रियात्मक हो सकता है।

लेकिन फिर भी हम बहुत-कुछ कर सकते हैं। यदि हम हर अपराधी को बदल नहीं सकते तो इतना तो कर सकते हैं कि जिन लोगों में इनसे सुलझने की पर्याप्त ताकत नहीं है उनके बोझ में कुछ कमी कर दें। उदाहरण के लिए बेकारी के विषय में और व्यावसायिक शिक्षा और चातुर्य के सम्बन्ध में हमें यह सम्भव कर देना चाहिए कि जो कोई भी काम करना चाहे उसे काम मिल सके। अपने सामाजिक जीवन की माँगों को कम करने का केवल यही एक तरीका है, ताकि मनुष्य-जाति का एक बड़ा भाग सहयोग करने की क्षमता के अन्तिम अवशेष को भी न गँवा बैठे। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि यदि ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाय तो अपराधियों की संख्या में कमी हो जायगी। मैं नहीं जानता कि क्या हमारा आज का युग आर्थिक परिस्थितियों में इस प्रकार की विशिष्ट सहायता देने के लिए तैयार है, परन्तु निश्चय ही हमें इस परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। हमें बच्चों को भी उनके भविष्य के व्यवसायों के लिए उपयुक्त शिक्षा देनी चाहिए, ताकि वे जीवन का सामना अच्छी तरह और अधिक सक्रियता के साथ कर सकें। ऐसी शिक्षा बन्दी-गृहों में भी दी जा सकती है। कुछ सीमा तक इस दिशा की ओर कदम भी उठाए जा चुके हैं और शायद हमारे लिए इतना ही आवश्यक है कि हम इन प्रयत्नों के वेग को बढ़ाएँ। जब कि

मुझे यह विश्वास नहीं है कि हर अपराधी का व्यक्तिगत उपचार सम्भव है, हम सामुदायिक उपचार से भी बहुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए मेरा सुझाव है कि हम अपराधियों की एक बड़ी संख्या से एक साथ सामाजिक समस्याओं पर ठीक उसी प्रकार विवाद करें जिस तरह कि हम उन पर यहाँ विचार करते रहे हैं। हम उनसे प्रश्न पूछ सकते हैं और उन्हें उत्तर देने की इजाजत दे सकते हैं; हम उनके मन को बोधमय कर सकते हैं और उन्हें उनके सारे जीवन के स्वप्नों से जगा सकते हैं। हमें चाहिए कि हम उन्हें संसार के व्यक्तिगत अर्थों के उन्माद से और अपनी क्षमताओं के विषय में इतने घटिया विचारों से स्वतन्त्र कर दें। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें अपने को इस प्रकार सीमित न करने दें तथा विभिन्न परिस्थितियों और सामाजिक समस्याओं के विषय में उनके अन्दर जो भय है उसे कम करने की शिक्षा दें। मुझे पक्का निश्चय है कि इस प्रकार के सामुदायिक उपचार से हम बहुत सफल परिणामों पर पहुँच सकते हैं।

हमें यह भी चाहिए कि अपने सामाजिक जीवन से हर ऐसी बात को दूर रखें जो अपराधियों, गरीबों और अनाथ व्यक्तियों के लिए चुनौती का काम कर सके। यदि समाज में धनाढ्यता और निर्धनता की चरम सीमाएँ पाई जाती हैं तो हीन-अवस्था के लोग खीझ जाते हैं और उत्तेजित हो जाते हैं। इसलिए हमें आडम्बर का प्रदर्शन कम करना चाहिए; सदा यह आवश्यक नहीं है कि किसी व्यक्ति के पास लाखों रुपये हैं—हम इसी को दुहराते रहें। पिछड़े और समस्याजनक बच्चों के उपचार में हमने देखा है कि उन्हें ताकत आजमाने की चुनौती देना निरर्थक होता है। वे अपने दृष्टिकोण में इसलिए दृढ़ निश्चय रहते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि वे अपने वातावरण

से सतत-संघर्ष में संलग्न हैं। यही बात अपराधियों के विषय में भी ठीक उतरती है। समस्त संसार में हम देख सकते हैं कि पुलिस के अफसर, अदालतों के न्यायाधीश और हमारे बनाये गए कानून भी अपराधियों को चुनौती देते रहते हैं और मानो कसौटी पर चढ़ाते रहते हैं। इस प्रकार की धमकियों का दिया जाना ठीक नहीं है। यदि हम चुप रहें, अपराधियों के नामों का बखान न करें तथा उनके विषय में इतना विज्ञापन न करें तो कहीं बेहतर होगा। इस व्यवहार को बदलने की आवश्यकता है। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि कठोरता अथवा नरमी किसी अपराधी में परिवर्तन कर सकती हैं। उसे तो तभी बदला जा सकता है जब कि वह अपनी परिस्थिति को अच्छी तरह समझने लगे। निस्सन्देह उनसे मानवीय बर्ताव करना उचित है और यह सोचना भूल है कि अपराधी मृत्युदण्ड के विचार से भयभीत हो सकते हैं, क्योंकि हमने देखा है कि कभी-कभी मौत की सजा स्वयं उनके खेल की उत्तेजना को और बढ़ा देती है, यहाँ तक कि मृत्यु-दण्ड भुगतते हुए अपराधी भी उसी भूल के विषय में सोचा करते हैं जिसके कारण वे पकड़े गए हैं।

यदि हम उन व्यक्तियों का पता चलाने के अपने प्रयत्नों को बढ़ा दें जो कि अपराधों के लिए वास्तव में उत्तरदायी होते हैं, तो यह उत्तम होगा। जहाँ तक मेरा अनुमान है कम-से-कम चालीस प्रतिशत अपराधी, शायद इससे भी कहीं अधिक, पकड़े नहीं जाते। यही बात सदैव अपराधी के गलत दृष्टिकोण के पीछे होती है। प्रायः प्रत्येक अपराधी के सामने ऐसे अवसर आते हैं जब कि वह अपराध करता है, किन्तु पकड़ा नहीं जाता। इनमें से कुछ बातों में तो हम सुधार कर भी चुके हैं तथा हम ठीक दिशा में बढ़ रहे हैं। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि

अपराधियों को बन्दीगृहों में अथवा उनसे निकलने के बाद अपमानित न किया जाय और न उन्हें चुनौती ही दी जाय। यदि ठीक प्रकार के व्यक्तियों को चुना जा सके तो नैतिक पड़-ताल करने वाले अफसरों की अधिक संख्या में नियुक्ति उपयोगी सिद्ध होगी। नैतिक जाँच करने वाले इन अफसरों को स्वयं समाज की समस्याओं और सहयोग के महत्व से परिचित होना आवश्यक है।

इन साधनों से हम कितना ही कुछ कर सकते हैं। लेकिन फिर भी हम अपराध की मात्रा में उतनी कमी नहीं कर सकते, जितनी कि हम चाहते हैं। सौभाग्यवश इसके लिए हमारे पास दूसरा साधन भी है और यह ऐसा साधन है जो आसानी से कार्यान्वित किया जा सकता है तथा बहुत सफल हो सकता है। यदि हम बच्चों को सहयोग करने की क्षमता में उचित रूप से शिक्षित कर सकें और हम उनकी सामाजिक दिलचस्पी का विकास कर सकें तो अपराधियों की संख्या में काफी कमी हो जायगी तथा इसके परिणाम निकट भविष्य में ही दीख पड़ेंगे। ऐसी दशा में इन बच्चों को उत्तेजित नहीं किया जा सकेगा और न ही गलत राह पर खींचा जा सकेगा; जीवन में उनका सामना किन्हीं भी कठिनाइयों अथवा तकलीफों से हो दूसरों में उनकी दिलचस्पी को पूर्णतया निर्मूल नहीं किया जा सकेगा, उनकी जीवन की समस्याओं को सन्तोषप्रद तरीकों से सुलझाने की ओर सहयोग करने की क्षमता आज के युग में पाई जाने वाली क्षमता से कहीं अधिक होगी। अपराधियों का अधिकांश अपनी वृत्ति में जीवन के बहुत पहले दिनों में ही प्रवृत्त हो जाता है। वे साधारण तौर पर किशोरावस्था में इसे शुरू करते हैं, शायद पन्द्रह और अट्ठाईस वर्ष की आयु में अपराध का सबसे अधिक बाहुल्य हो जाता है। इसलिए हमारी सफलता

बहुत शीघ्र ही दीख पड़ेगी। केवल इतना ही नहीं, मुझे निश्चय है कि यदि बच्चों को ठीक शिक्षा दी जाय तो वे अपने घरों के सारे वातावरण को प्रभावित करेंगे। स्वतन्त्र भविष्य के प्रति उत्साह-भावना रखने वाले, आशावादी और सुविकसित बच्चे अपने माता-पिता के लिए सहायक और धैर्य देने वाले बनते हैं। सहयोग की भावना शीघ्र ही समस्त संसार में व्याप्त हो जायगी और मानव-मात्र का सारा सामाजिक वातावरण एक ऊँचे स्तर तक उठ जायगा। बच्चों को इस प्रकार प्रभावित करने के साथ-ही-साथ हम माता-पिता और अध्यापकों को भी प्रभावित करते जायँगे।

अब यही प्रश्न शेष रह गया है कि अपने प्रयत्न शुरू करने का केन्द्र क्या हो? बच्चों का विकास करने के लिए कौनसे तरीके ढूँढ़े जायँ कि वे बाद के जीवन के कर्तव्यों और समस्याओं का सामना कर सकें? क्या हम सब माता-पिताओं को उचित रूप में शिक्षित कर सकते हैं? ऐसा सम्भव नहीं है, इस सुझाव में अधिक आशा नहीं दीखती। माता-पिताओं को इकट्ठा करना कठिन बात है और जिन माता-पिताओं को विशेष शिक्षा की आवश्यकता है उन्हें तो हम कभी नहीं मिल सकते। हम उनके पास तक नहीं पहुँच सकेंगे, इसलिए हमें कोई दूसरा मार्ग तलाश करना चाहिए। क्या हम सब बच्चों को पकड़कर, उन्हें ताले में एक साथ बन्द करके, सतत नैतिक नियन्त्रण में और सदा सावधानतापूर्ण संरक्षण में रख सकते हैं? यह सुझाव भी कोई अच्छा सुझाव नहीं जान पड़ता। परन्तु एक मार्ग है जो कि कार्यान्वित होने के योग्य दीख पड़ता है और जिसके सच्चे हल की आशा मिलती है। हम अध्यापकों को सामाजिक उन्नति का साधन बना सकते हैं, उन्हें परिवार में की गई भूलों को सुधारने की और दूसरों के प्रति बच्चों की

दिलचस्पी का विकास करने तथा उसे फैलाने की शिक्षा दे सकते हैं। यह स्कूल का बिल्कुल ही स्वाभाविक विकास व कर्तव्य है। क्योंकि बाद के जीवन के सब कर्तव्यों के लिए परिवार में बच्चों को उपयुक्त शिक्षा नहीं मिल सकती, इसलिए मनुष्य ने परिवार की फैलाई हुई बाँह के समान स्कूलों की स्थापना की है। हम मानव को अधिक सामाजिक वृत्ति का, अधिक सहयोगी और मनुष्यमात्र की भलाई में अधिक दिलचस्पी लेने वाला, बनाने के लिए स्कूलों का प्रयोग क्यों न करें ?

आप देखेंगे कि हमारी सक्रियता का निम्नलिखित विचारों पर आश्रित होना आवश्यक है। मैं यहाँ उनका वर्णन संक्षिप्त रूप में करूँगा। हम आज की सभ्यता से जो भी लाभ उठाते हैं वे सब ऐसे लोगों के प्रयत्नों से सम्भव हुए हैं जिन्होंने कुछ प्रदान किया है। यदि व्यक्तिगत रूप में लोग सहयोगी नहीं होते रहे, दूसरों में दिलचस्पी नहीं लेते रहे, सम्पूर्ण में अपने अंश का प्रदान नहीं करते रहे तो उनका समस्त जीवन ही निरर्थक रहा है। उनका लोप हो गया है और वे अपने पीछे अपना कोई भी चिह्न नहीं छोड़ गए। प्रदान करने वाले व्यक्तियों का काम ही शेष जीवित रहा है। उनकी भावना स्थायी रही है और अमर हो गई है। यदि हम इस बात को बच्चों की शिक्षा का आधार बना लें तो वे सहयोगयुक्त कामों में स्वाभाविक सम्मान रखते हुए बड़े होंगे। उनके सामने जब कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी तो वे अपने को कमजोर अनुभव नहीं करेंगे, अपितु कठिन-से-कठिन समस्याओं का मुकाबला करने के लिए और उन्हें साझे लाभ के लिए हल करने के लिए अपने को पर्याप्त मात्रा में शक्तिशाली पाएँगे।

: १० :

व्यवसाय

जिन तीन बन्धनों से मनुष्यमात्र बँधा हुआ है वही बन्धन जीवन की तीन समस्याओं को पैदा करते हैं, परन्तु इनमें से कोई भी समस्या अकेली नहीं सुलझाई जा सकती। सुलझाने से पहले इनमें से प्रत्येक समस्या यह अपेक्षा रखती है कि पहले शेष दोनों का सफल हल ढूँढ़ लिया जाय। पहला बन्धन व्यवसाय की समस्या को प्रस्तुत करता है। हम इस नक्षत्र के धरातल पर रह रहे हैं और हमारे पास केवल इस नक्षत्र के प्राकृतिक साधन—इसकी धरती का उपजाऊपन, इसकी खनिज-सम्पत्ति, इसका जलवायु और अन्तरिक्ष हैं। मनुष्य का काम सदा यह रहा है कि परिस्थितियाँ जिस समस्या को उपजाती हैं उनके उपयुक्त उत्तर की खोज करे, और हम आज भी यह नहीं सोच सकते कि हमने उनका पर्याप्त उत्तर पा लिया है। प्रत्येक युग में मनुष्य उनके उत्तर के एक स्तर तक अवश्य पहुँच सका है, परन्तु सदा ही इसमें सुधार और अधिक सफलता के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता रही है।

हमारे पास इस समस्या को सुलझाने का जो सबसे अच्छा साधन है वह दूसरी समस्या के हल से मिलता है। मनुष्य जिस दूसरे बन्धन से बँधे हुए हैं वह यह है कि वे मानव-जाति के सदस्य हैं और इस जाति के दूसरे सदस्यों के साथ निवास कर रहे हैं। यदि एक मनुष्य संसार में बिल्कुल अकेला ही

रहा हो तो उसका व्यवहार व दृष्टिकोण बिलकुल ही भिन्न होगा। हमें सदा दूसरों का ध्यान रखना पड़ता है, दूसरों से अपने सम्बन्ध को सन्तुलित करना पड़ता है और उनमें दिलचस्पी पैदा करनी होती है। यह समस्या मित्रता, सामाजिक भावना और सहयोग के साधन से सर्वोत्तम सुलझती है। इस समस्या का हल खोज लेने पर पहली समस्या के हल की ओर बड़ा कदम उठा लिया जाता है।

मनुष्यों के परस्पर सहयोग करने के कारण ही हम श्रम-विभाजन का आविष्कार कर सके—वह आविष्कार जो मानव की भलाई के लिए मुख्य संरक्षण का काम देता है। मानव-जीवन को सुरक्षित रखना कभी सम्भव न होता यदि प्रत्येक व्यक्ति इस धरती से अपना जीविकोपार्जन स्वयं ही, बिना दूसरों के सहयोग के तथा भूतकालीन सहयोग के परिणामों की बिना सहायता लिये ही, करने की कोशिश करे। श्रम-विभाजन के माध्यम से हम भिन्न-भिन्न अभ्यासों और विविध शिक्षाओं के परिणामों का उपयोग कर सकते हैं; कितनी ही प्रकार की क्षमताओं का इस उद्देश्य से संगठन कर सकते हैं कि वह सब साझी भलाई में प्रदान कर सकें, अरक्षितता के विरुद्ध संरक्षण प्रस्तुत कर सकें और समाज के सब सदस्यों को प्राप्त होने वाले अवसरों का संवर्धन कर सकें। यह सच है कि इस दिशा में जो कुछ करना सम्भव था हम उसे कर चुकने का गर्व नहीं कर सकते और हम यह भी नहीं कह सकते कि श्रम-विभाजन अपने सर्वाधिक उपयोगी विकास-स्तर तक पहुँच चुका है। परन्तु व्यवसाय की समस्या को हल करने की हर कोशिश आवश्यक रूप में मानव के श्रम-विभाजन और सहयोगयुक्त प्रयत्नों के इसी दायरे में ही होती है ताकि हम अपने काम से दूसरों के भी लाभ में वृद्धि कर सकें।

कुछ लोग व्यवसाय की इस समस्या से बच निकलना चाहते हैं, वे इस तरह का काम करना चाहते हैं तथा इस प्रकार अपने-आपको संलग्न रखना चाहते हैं कि मनुष्य की साझी दिलचस्पी से दूर ही उलझे रहें। हम सदा यह पाएँगे कि यदि वे इस समस्या से बचते हैं तो वास्तव में अपने साथियों से सहायता की माँग कर रहे होंगे। एक अथवा दूसरे तरीके से अपना श्रम किये बिना वे दूसरों के श्रम पर जी रहे होंगे। यह अधिक लाड-प्यार पाने वाले बच्चे की जीवन-प्रणाली है— जब-कभी उसके सामने कोई समस्या पेश हो जाय तो यह माँग करना कि वह दूसरों के प्रयत्नों द्वारा उसके लिए सुलझनी चाहिए। मुख्यतया लाड-प्यार से बिगड़ा बच्चा ही मानव-सह-योग की गति में बाधा डालता है और जो लोग जीवन की समस्या को सुलझाने में सक्रियता से लगे हुए हैं उन पर अनुचित बोझ डालता है।

मनुष्य पर तीसरा बन्धन इस बात का है कि वह दो योनियों में से एक योनि का सदस्य है दूसरी का नहीं। मनुष्य-जाति के जीवित रहने का रहस्य उसके दूसरी योनि के प्रति दृष्टिकोण पर और यौन-कर्तव्य की पूर्ति पर आश्रित है। दो योनियों में यह सम्बन्ध भी एक समस्या को समुपस्थित करता है; और उस समस्या को भी बाकी दोनों समस्याओं से अलग नहीं सुल-झाया जा सकता है। प्रेम और विवाह की समस्या के सफल हल के लिए श्रम-विभाजन में प्रदान करने वाले व्यवसाय की और दूसरे मनुष्यों के अच्छे और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की आव-श्यकता है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, आज के युग में इस समस्या का सर्वोत्तम हल समाज और श्रम-विभाजन की माँगों का अनुकूल हल एकपत्नीव्रत में ही है। एक व्यक्ति जिस तरीके से इस समस्या का उत्तर देता है उससे उसके सह-

-योग की मात्रा मापी जा सकती है। ये तीनों समस्याएँ कभी भी अलग-अलग नहीं मिलतीं; ये तीनों एक-दूसरे को गहरा प्रभावित करती हैं; एक समस्या के सुलझने से बाकी दोनों को सुलझाने में सहायता मिलती है। हम इतना भी कह सकते हैं कि ये तीनों एक ही परिस्थिति और एक ही समस्या के विभिन्न पहलू हैं—और वह मूल-समस्या उस अपने वातावरण में ही मनुष्य-जीवन को सुरक्षित रखने की तथा उसे जारी रखने की है, जिसमें वह अपने-आपको पाता है।

यहा हम इस बात को फिर दोहरा दें कि जो स्त्री अपने मातृत्व के कतव्यों की पूर्ति द्वारा मानव के जीवन में हाथ बंटाती है वह मानव-श्रम-विभाजन में उतना ही बड़ा हिस्सा ले रही है जितना कि कोई ले सकता है। यदि वह अपने बच्चों में दिलचस्पी ले रही है और अच्छे मानव-साथी बनने के लिए उनका मार्ग सुगम कर रही है; यदि उनकी दिलचस्पी के क्षेत्र को विस्तृत कर रही है और उन्हें सहयोग की शिक्षा दे रही है, तो उसका काम इतना महत्वपूर्ण है कि उसका मूल्य कभी चुकाया नहीं जा सकता। हमारी अपनी सभ्यता में माता के कर्तव्यों का कम मूल्यांकन किया जाता है और उसे प्रायः बहुत आकर्षक अथवा आदरणीय कार्य नहीं समझा जाता। इसके दाम अप्रत्यक्ष रूप से ही भरे जाते हैं और जो स्त्री इसे मुख्य रूप से अपना धन्धा बना ले, उसे आमतौर पर आर्थिक परवशता की स्थिति में रहना पड़ता है। किन्तु एक परिवार की सफलता का आश्रय माता और पिता के कर्तव्यों पर एक समान रहता है। चाहे माता घर के काम-काज में जुटी रहे अथवा स्वतन्त्र निर्वाह करे, माता के रूप में उसके कर्तव्यों को उसके पति के कर्तव्यों से किसी प्रकार भी निचला दर्जा नहीं दिया जा सकता।

एक बच्चे की व्यवसाय-सम्बन्धी दिलचस्पी के विकास में

माता का प्रभाव पहला प्रभाव होता है। जीवन के पहले चार अथवा पाँच वर्षों की शिक्षा और प्रयत्नों का बच्चे के वयस्क-जीवन की सक्रियता के मुख्य क्षेत्र के निर्धारण में प्रमुख भाग होता है। यदि कभी किसी के विषय में मुझसे व्यवसाय-सम्बन्धी मन्त्रणा ली जाती है तो मैं हमेशा यह पूछता हूँ कि इस व्यक्ति ने अपना जीवन आरम्भ किस प्रकार किया था और वह अपने पहले वर्षों में किन बातों में दिलचस्पी लिया करता था। उसकी इस काल की स्मृतियाँ निश्चित रूप से जतला देती हैं कि उसने अपने को लगातार किस ध्येय के लिए अभ्यस्त किया है—वे उसके मूल-चित्र को और चेतन समझ-बूझ की मूल योजना को स्पष्ट कर देती हैं। पहली स्मृतियों के महत्व की ओर मैं एक बार फिर ध्यान खींचूँगा।

व्यवसाय की शिक्षा और अभ्यास की ओर दूसरा कदम स्कूलों में उठाया जाता है। मेरा विश्वास है कि हमारे स्कूल बच्चे की अन्य संलग्नताओं की ओर, उनके हाथों, कानों और आँखों की क्षमता की ओर, तथा कर्तव्यों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं। यह शिक्षा दूसरे विषयों की शिक्षा की तरह ही महत्वपूर्ण है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भिन्न विषयों की शिक्षा बच्चे के व्यवसाय-सम्बन्धी विकास के लिए भी महत्वपूर्ण होती है। हम बाद के जीवन में लोगों को प्रायः यह कहते सुनते हैं कि वे स्कूल में पढ़ी हुई लेटिन अथवा फ्रेंच भाषा को भूल चुके हैं, परन्तु शायद फिर भी स्कूल में इन विषयों को पढ़ाना कोई भूल नहीं थी। भूतकाल के सब अनुभवों की सहायता से हमने देखा है कि इन सब विषयों की पढ़ाई मन की सभी कार्य-क्षमताओं की शिक्षा का सुअवसर प्रस्तुत करती है। ऐसे अर्वाचीन स्कूल भी हैं जहाँ दस्त-कारी और शिल्प पर विशेष ध्यान दिया जाता है, हम इस

प्रकार भी बच्चे के अनुभवों में वृद्धि कर सकते हैं और उसका आत्म-विश्वास बढ़ा सकते है।

यदि बचपन से ही बच्चे को पता हो कि वह बड़ा होकर किस व्यवसाय को अपनाना पसन्द करेगा तो उसका विकास बहुत सहज हो जाता है। यदि हम बच्चों से पूछें कि वे क्या बनना चाहेंगे तो उनमें से अधिकतर कुछ-न-कुछ उत्तर देंगे। वे बहुत सोच-विचारकर उत्तर नहीं देते और जब वे यह कहते हैं कि हम हवाई जहाज के उड़ाकू अथवा इंजनों के चालक बनना चाहते हैं तो यह नहीं जानते कि वे इस व्यवसाय को ही क्यों चुन रहे हैं। इनमें छिपे मूल लक्ष्यों को पहचानना उस दिशा को देखना है जिस ओर वे प्रयत्नशील हैं। यह जानना कि उन्हें क्या बात प्रेरित कर रही है, उनकी स्थिति और श्रेष्ठता का ध्येय क्या है, और वे इसे ठोस और कार्यान्वित करने के क्या उपाय सोचते हैं, हमारा कर्तव्य है। बच्चे जो उत्तर देते हैं वह हमें केवल एक ही ऐसे व्यवसाय से परिचित करता है जो व्यवसाय उनके अनुसार श्रेष्ठता का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु हम इस व्यवसाय से उन्हें अपने ध्येय तक पहुँचने में सहायता पहुँचाने वाले दूसरे अवसरों को भी पहचान सकते हैं।

एक बारह अथवा चौदह वर्ष के बच्चे को उस व्यवसाय के विषय में, जिसे उसने अपनाना है, काफी कुछ मालूम हो जाना चाहिए। जब मैं सुनता हूँ कि इस आयु में भी कोई बच्चा यह नहीं जानता कि बाद के जीवन में उसने क्या बनना है तो मुझे दुख होता है। इस प्रकार व्यक्त की गई इच्छा के अभाव का यह अर्थ नहीं है कि उसकी कोई भी विशेष अभिरुचि नहीं है। शायद वह बहुत ही महत्त्वाकांक्षी है, किन्तु इतना साहसपूर्ण नहीं है कि उन महत्त्वाकांक्षाओं को वह पूर्ण

कर सके। ऐसे मामले में उनकी मुख्य दिलचस्पी और विशेष झुकाव का पता करने के लिए खास प्रयत्न करना चाहिए। कुछ बच्चे सोलह वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ने के समय तक अपने भविष्य के व्यवसाय के विषय में निश्चित नहीं हो पाते। वे प्रायः कुशाग्रबुद्धि के विद्यार्थी होते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि उनकी जीवन-धारा किस ओर बहेगी। हम देख सकते हैं कि ऐसे बच्चे बहुत महत्वाकांक्षी होते हैं, परन्तु सहयोगी नहीं होते। उन्होंने श्रम-विभाजन में अपने स्थान का पता नहीं लगाया और वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के ठोस तरीकों का पता उचित काल में नहीं लगा सकते। इस प्रकार बच्चों को प्रारम्भ में ही पूछना कि आगे चलकर उनका क्या व्यवसाय होगा, लाभदायक है। मैं स्कूलों में प्रायः यह प्रश्न पूछा करता हूँ, ताकि बच्चों को इस ओर विचार करने का अवसर मिले। वे इस समस्या को भूलें नहीं और न इसके उत्तर को छिपाने की इच्छा करें। मैं उनसे यह भी पूछता हूँ कि उन्होंने इस व्यवसाय को क्यों चुना है और इसके उत्तर में मुझे प्रायः बहुत विस्तृत और स्पष्ट विवरण दिया जाता है। एक बच्चे द्वारा व्यवसाय के चुनाव में हम उसकी समस्त जीवन-प्रणाली को देख सकते हैं। वह अपने प्रयत्नों की मुख्य दिशा को और जिस बात को वह अपने जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान समझता है, उसे दिखा रहा है। हमें उसे इस बात की स्वतन्त्रता देनी चाहिए कि वह जिस बात को जो मूल्य देना चाहता है दे सके, क्योंकि हमारे पास स्वयं ही यह कहने का कोई साधन नहीं है कि कौनसा व्यवसाय ऊँचा है और कौनसा व्यवसाय नीचा। यदि वह वास्तव में अपने काम को निभाता है और अपने-आपको दूसरों के प्रदान करने वाले कार्यों में संलग्न रखता है तो वह उपयोगिता के उसी स्तर पर है जिस पर कोई दूसरा हो सकता

है। उसका मुख्य कर्तव्य तो यह है कि वह अपने-आपको शिक्षित और अभ्यस्त करे, स्वयं ही अपना आधार बनने का प्रयत्न करे तथा अपनी दिलचस्पी को श्रम-विभाजन के दायरे में निर्दिष्ट कर दे।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो किसी भी प्रकार के व्यवसाय को अपनाकर कभी भी सन्तुष्ट नहीं होते। उन्हें किसी व्यवसाय की नहीं, अपितु श्रेष्ठता के एक सरल आश्वासन की इच्छा होती है। वे जीवन की समस्याओं का सामना करना नहीं चाहते, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि उनके सामने जीवन द्वारा समस्याओं का प्रस्तुत किया जाना ही उचित नहीं है। ये लाड-प्यार से बिगड़े हुए बच्चे होते हैं जो सदैव दूसरों का आश्रय पाने की इच्छा रखते हैं। सम्भवतः स्त्री-पुरुषों का अधिकांश उसी दिशा में विशेष दिलचस्पी रखता है जिसमें उन्होंने अपने जीवन के पहले चार या पाँच वर्षों में निरन्तर अभ्यास किया है तथा जो उन दिलचस्पियों को भूल नहीं सकते, परन्तु जिन्हें आर्थिक परिस्थितियों अथवा अपने माता-पिता के दबाव ने एक भिन्न दिशा को पकड़ने पर और एक ऐसे व्यवसाय को अपनाने पर, जिसमें उनकी दिलचस्पी नहीं है, विवश किया है। यदि हम किसी बच्चे की पहली स्मृतियों में दृष्टिगत चीजों की ओर विशेष दिलचस्पी पाएँ तो इस निश्चय पर पहुँच सकते हैं कि वह किसी ऐसे व्यवसाय के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा जिसमें वह अपनी आँखों का प्रयोग कर सके। व्यवसाय-सम्बन्धी मन्त्रणा में पहली स्मृतियों को बहुत महत्वपूर्ण मानना चाहिए। एक बच्चा चलती हुई हवा के शब्द, बजती हुई घण्टी अथवा उससे किसी के बात करने के संस्मरण का वर्णन करता है। हम जानते हैं कि यह बच्चा श्रोत्र-इन्द्रिय प्रधान बच्चों के विभाग में से है और अन्दाजा लगा सकते हैं कि वह संगीत से सम्बन्धित

किसी व्यवसाय के लिए उपयुक्त होगा। किसी दूसरे बच्चे के संस्मरणों में हम गति और सक्रियता या वर्णन पा सकते हैं। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अधिक सक्रियता की अपेक्षा करते हैं; शायद वे ऐसे व्यवसायों में दिलचस्पी ले सकें जिनमें घर से बाहर मेहनत, मजदूरी अथवा यात्रा की जरूरत पड़े।

एक बड़ी इच्छा और प्रयत्न परिवार के दूसरे सदस्यों से आगे बढ़ जाने का होता है—विशेषतया पिता अथवा माता से कहीं आगे बढ़ जाने का। यह इच्छा बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। हम पुरानी पीढ़ी की स्थिति से उन्नति हुई देखकर प्रसन्न होते हैं और यदि एक बच्चा व्यवसाय में अपने पिता से आगे बढ़ जाना चाहता है तो कुछ हद तक उसे अपने पिता के अनुभव अपना काम आरम्भ करने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। एक ऐसे परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे, जिसमें पिता पुलिस का सिपाही रहा हो प्रायः वकील अथवा न्यायाधीश बनने की इच्छा रखते हैं। यदि पिता किसी डॉक्टर के दफ्तर में नौकर हो तो बच्चा स्वयं डॉक्टर बनना चाहता है। यदि पिता कहीं अध्यापन का काम कर रहा हो तो बच्चा किसी यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनना चाहता है।

यदि हम बच्चों को ध्यान से देखें तो पहचान सकते हैं कि वे वयस्क जीवन में किस व्यवसाय के लिए अभ्यास कर रहे हैं। उदाहरण के लिए जब बच्चे की इच्छा अध्यापक बनने की हो तो हम देख सकते हैं कि वह किस तरह छोटे बच्चों को इकट्ठा करता है और उनसे स्कूल की नकल उतारने का खेल खेलता है। बच्चों को खेल उनकी दिलचस्पी की ओर इशारा कर सकते हैं। एक लड़की, जो माता होने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है, गुड़ियों से खेलेगी और बच्चों में विशेष दिलचस्पी रखने का

अभ्यास करेगी। मातृत्व-पद के लिए इस दिलचस्पी को प्रोत्साहित करना उचित है और हमें छोटी लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया देने से डरना नहीं चाहिए। कुछ लोग यह सोचते हैं कि उन्हें गुड़िया देकर हम उन्हें केवल वास्तविकता के सम्पर्क से दूर करेंगे; परन्तु असल में वह मातृत्व के कर्तव्यों में शिक्षा पाने और उन्हें निभाने का अभ्यास कर रही होती हैं। जब वे जीवन में इसका आरम्भ बहुत छोटी अवस्था में करें तो यह लाभदायक है, क्योंकि यदि वह इसका अभ्यास बहुत देर बाद करें तो उनकी दूसरी दिलचस्पियाँ स्थिर हो चुकी होती हैं। बहुत से बच्चे यन्त्र आदि में दिलचस्पी प्रदर्शित किया करते हैं, यह बात भी बाद के जीवन के लिए, यदि वे अपनी इच्छाओं को फलीभूत देख सकें, एक उपयोगी व्यवसाय की आशा दिला सकती है।

इनके अतिरिक्त कई दूसरे बच्चे ऐसे होते हैं जो कभी भी प्रमुखता की स्थिति पर बिठाया जाना पसन्द नहीं करते। उनकी मुख्य दिलचस्पी तो किसी नेता को, जिसका वे अनुसरण कर सकें, या किसी दूसरे बच्चे अथवा वयस्क को, जिसके अधीन वे अपने को कर सकें, तलाश करने की होती है। यह लाभदायक विकास नहीं है और यदि हम पराधीन होने की ऐसी प्रवृत्तियों को कम कर सकें तो मुझे प्रसन्नता होगी। यदि हम उनको रोक न सकें तो ऐसे बच्चे बाद के जीवन में प्रमुख स्थिति तक पहुँचने में असमर्थ होंगे और अपनी इच्छानुसार ही ऐसे पदों को चुनेंगे जहाँ उन्हें निचले दर्जे के अफसरों का काम करना पड़े, जहाँ उनका साधारण पुनरावृत्ति का काम हो तथा जहाँ उनके द्वारा सम्पन्न होने वाले सब काम का प्रस्ताव पहले ही हो चुका हो।

जिन बच्चों का सामना बीमारी अथवा मृत्यु की समस्याओं

से, बिना किसी तैयारी के, होता है उनकी इन बातों में हमेशा बड़ी दिलचस्पी होती है। वे डॉक्टर, नर्स अथवा औषधि-विक्रेता बनना चाहते हैं। मेरा विश्वास है कि उनकी इच्छाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, क्योंकि मैंने देखा है कि ऐसी दिलचस्पी वाले जो बच्चे बाद में डॉक्टर बने उनकी शिक्षा बहुत पहले आरम्भ हो गई थी और वह अपने व्यवसाय को बहुत पसन्द करते थे। कभी-कभी मृत्यु के अनुभव का प्रभाव एक बिलकुल भिन्न प्रकार का भी हो सकता है। बच्चे की इच्छा होगी कि वह कलात्मक अथवा साहित्यिक सृजन द्वारा मृत्यु पर विजय पाए। वह पक्का धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति भी बन सकता है। विक्षिप्त अथवा आलसी होकर किसी व्यवसाय से बचे रहने की गलत शिक्षा भी जीवन में बहुत पहले शुरू हो जाती है। जब हम ऐसे बच्चों को बाद के जीवन में कठिनाइयों में उलझता देखें तो हमें चाहिए कि वैज्ञानिक तरीकों से उनकी भूल का पता लगाएँ और वैज्ञानिक तरीकों से ही उनमें सुधार करने का प्रयत्न करें। यदि हमारा निवास किसी ऐसे क्षेत्र में हो जहाँ बिना किसी काम के हमारी आवश्यकता की सब चीजें मिल सकें तो शायद वहाँ आलसी रहना पुण्य की बात और मेहनती होना पाप की बात होगी। जिस भूमि पर हमारा निवास है उससे अपने सम्बन्ध में जहाँ तक हम सोच सकते हैं, समझ-बूझ के अनुसार व्यवसाय की समस्या का तो केवल एक ही युक्ति-युक्त हल और एक ही उत्तर दिखाई देता है, कि हमें काम, सहयोग और प्रदान करना चाहिए। इसकी अनुभूति मानव के मानस में सदैव रही है। अब हम इसकी आवश्यकता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देख सकते हैं।

विशेष ख्याति-प्राप्त, प्रतिभावान गुणियों में आरम्भिक बचपन से पाई गई शिक्षा का प्रभाव सदा स्पष्ट रहा है और

मेरा विचार है कि इन विशेष प्रतिभावान गुणियों का जीवन इस विषय पर प्रकाश डाल सकता है। मनुष्य उन्हीं व्यक्तियों को जन्मजात प्रतिभावान कहकर पुकारते हैं जिनका दान सार्भी भलाई में बड़ी मात्रा में रहा है। हम किसी भी ऐसे जन्मजात प्रतिभाशाली व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकते जिसने अपने पीछे मनुष्य के लाभ की कोई बात न छोड़ी हो। कलाओं का जन्म सब व्यक्तियों में सर्वाधिक सहयोगी व्यक्तियों द्वारा होता है और मानवों में इन प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने सदा सभ्यता के सारे स्तर को ही ऊँचा किया है। अपनी कविताओं में होमर ने केवल तीन रंगों का ही वर्णन किया है और इन्हीं तीन रंगों ने समस्त रंग-भेद का काम पूरा किया था। निस्सन्देह इस युग में लोग रंगों के और भी भेदों को पहचान सकते थे परन्तु उनका नाम रखना आवश्यक था, क्योंकि उनमें दीखने वाले भेद सूक्ष्म जान पड़ते थे। अब हम जिन रंगों का नाम रख चुके हैं उनमें भेद करना किसने सिखाया है? हमें यह कहना ही पड़ेगा कि यह कलाकारों और चित्रकारों का काम है। वाक्यों ने हमारी सुनने की क्षमता में असाधारण पटुता विकसित कर दी है। यदि हम आज असभ्य मनुष्य के कर्ण-कटु शब्दों की जगह सुरीली आवाज़ में बोलते हैं तो इसका श्रेय संगीतज्ञों को है। उन्होंने ही हमारे मन को तेज-सम्पन्न किया है और हमें अपनी क्षमताओं को अभ्यस्त करने की शिक्षा दी है। किन लोगों ने हमारी भावनाओं की गहराई को बढ़ाया और हमें अच्छा बोलने और अच्छा समझने की सीख दी? यह कवियों का काम है, उन्होंने ही हमारी भाषा को सम्पन्न किया, उसे अधिक लचकीला बनाया तथा जीवन के सब कर्तव्यों के उपयुक्त कर दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता सकता कि यह अतीव प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति मनुष्यों मे सर्वा-

धिक सहयोगी हुए है। उनके व्यवहार व दृष्टिकोण के कुछ पहलुओं में शायद हम उनकी सहयोग-सामर्थ्य को नहीं देख सकते थे; परन्तु उनके जीवन के सम्पूर्ण चित्र में यह स्पष्ट हो जाता है। उनके लिए दूसरों के समान सहयोग करना आसान नहीं था। वह एक कठिन मार्ग पर चल रहे थे और उन्हें बहुत-सी बाधाओं को पार करना था। प्रायः उनका जीवन गम्भीर रूप से विकृत अंगों से आरम्भ होता था। प्रायः सभी अद्वितीय व्यक्तियों में हम किसी-न-किसी रूप की अंग-सम्बन्धी अपूर्णता पाते हैं और यह विचार होता है कि जीवन के आरम्भ में उनका सामना बड़ी कठिन परिस्थितियों से था, परन्तु उन्होंने कठिनाइयों से कठोर संघर्ष किया तथा उन पर पार पाया। विशेषतया यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार उन्होंने अपनी दिलचस्पियों का निश्चय बहुत शुरू में कर लिया था और किस प्रकार उन्होंने अपने बचपन में इनके विषय में विशेष प्रयास किया। उन्होंने अपनी भावानुभूतियों को सूक्ष्म कर लिया ताकि वह जगत की समस्याओं से सम्पर्क स्थापित कर सकें तथा उन्हें समझ सकें। इस आरम्भिक प्रयास से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनकी कला और उनकी प्रतिभा उनकी अपनी ही सृष्टि थीं, प्रकृति अथवा वंश परम्परा से प्राप्त पारितोषिक नहीं। उन्होंने कठोर परिश्रम किया और मानव-मात्र ने लाभ उठाया।

आरम्भिक काल के यह प्रयास बाद की सफलता के सर्वोत्तम नींव होते हैं। उदाहरण के लिए एक तीन अथवा चार वर्ष की लड़की को लीजिए, जिसे अकेली छोड़ दिया गया। वह अपनी गुड़िया के लिए एक टोप सीने लगती है। जब हम उसे इस काम में संलग्न पाएँ तो कह सकते हैं कि टोप कितन सुन्दर बना है और वह भी सुझा सकते हैं कि वह इससे भी

बढ़िया किस प्रकार बन सकता है। इससे यह छोटी लड़की प्रोत्साहन और प्रेरणा पाती है। वह अपनी कोशिशों और चतुरता को बढ़ाती है। परन्तु अनुमान कीजिए कि हमने लड़की से यह कहा है, "उस सुई को रख दो, तुम इसे चुभा लोगी, यह टोप बनाने की तो कोई जरूरत ही नहीं है, हम जाकर किसी दूकान से इससे बढ़िया टोप खरीद देंगे।" वह अपने प्रयास को छोड़ देगी। यदि बाद के जीवन में हम इन दो लड़कियों की तुलना करें तो देखेंगे कि पहली ने अपने कलात्मक झुकाव का विकास कर लिया है और काम करने में दिलचस्पी लेती है। दूसरी लड़की यह भी नहीं सोच सकेगी कि अपने-आप से क्या करे और सदा यह विचार करेगी कि वह अपनी बनाई चीजों से कहीं अच्छी चीजें बाजार से खरीद सकती है।

यदि पारिवारिक जीवन में पैसे के महत्व पर आवश्यकता से अधिक तूल दिया जाता है तो बच्चों को व्यवसाय की समस्या को उससे उत्पन्न होने वाले रुपये-पैसों की रोशनी में ही देखने का आकर्षण रहेगा। यह एक बड़ी गलती होगी, क्योंकि ऐसा बच्चा किसी ऐसी दिलचस्पी का नहीं अपना सकेगा जो मनुष्य के प्रति कुछ प्रदान कर सके। यह सत्य है कि प्रत्येक को जीविकोपार्जन करना चाहिए; यह भी सत्य है कि हमें ऐसे मनुष्य मिलते हैं जो इस बात का उल्लंघन करते हैं और अपने-आपको दूसरों का बोझ बना लेते हैं, परन्तु यदि एक बच्चे की दिलचस्पी केवल पैसा बनाने में ही है तो वह सहज ही सहयोग के मार्ग को खो सकेगा और अपने व्यक्तिगत लाभों की तलाश में रहेगा। यदि "पैसा बनाना ही उसका एक उद्देश्य है और इससे किसी सामाजिक दिलचस्पी का सम्बन्ध नहीं है तो इसका कोई कारण नहीं कि वह क्यों लूट-खसोट कर और दूसरों को धोखा देकर पैसा न कमाए। चाहे परिस्थिति इतनी बिगड़ी

न भी हो तब भी सामाजिक दिलचस्पी उसके ध्येय के साथ बहुत थोड़ी मात्रा में सम्बन्धित होगी । सम्भव है कि वह व्यक्ति काफी पैसा बनाए, परन्तु उसकी चेष्टाएँ अपने साथियों के लिए बहुत लाभयुक्त न होंगी । हमारे आज के उलझे युग में इस रीति से सफल होना और धनी बनना सम्भव है । कभी-कभी एक गलत मार्ग भी किसी बात में सफल दीख सकता है । इससे हमें आश्चर्यान्वित नहीं होना चाहिए। हम यह आशा भी नहीं दिला सकते कि जो व्यक्ति जीवन के प्रति ठीक दृष्टि-कोण रखकर जीवन बिताएगा उसे तुरन्त सफलता ही प्राप्त होगी, किन्तु हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वह अपना साहस बनाए रखेगा और आत्म-सम्मान भी नहीं गँवाएगा ।

कभी-कभी किसी व्यवसाय को समाज और प्रेम की समस्याओं से कतराने और उसका बहाना बनाने के काम में प्रयुक्त किया जा सकता है । हमारे सामाजिक जीवन में प्रायः बहुत बार व्यापार-सम्बन्धी सक्रियता के आधिक्य को प्रेम और विवाह की समस्याओं से पीछा छुड़ाने का तरीका बनाया जा सकता है और कभी-कभी इसकी विफलता के बहाने के रूप में भी प्रयोग होता है । कोई मनुष्य बड़ी तन्मयता से अपने व्यापार में लगा रहता है और सोचता है, "मेरे पास तो दाम्पत्य-जीवन के लिए कोई समय ही नहीं है और इसलिए मैं इस जीवन की अप्रसन्नता के लिए जिम्मेदार नहीं हूँ ।" विशेष-तया स्नायविक रोगियों में समाज और प्रेम की दो समस्याओं से बचे रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । वे इतर-योनि व्यक्तियों की ओर अग्रसर नहीं होते और यदि होते हैं तो गलत ढंग से होते हैं । उनका कोई मित्र नहीं होता; न ही वे दूसरे लोगों में दिलचस्पी लेते हैं । परन्तु वे दिन और रात अपने ही व्यापार में तल्लीन रहते हैं । रात को बिछौने में पड़कर भी वे इसी

विषय में सोचते हैं और इसी के सम्बन्ध में स्वप्न देखते हैं। वे अपने को आवेश का शिकार बना लेते हैं और इस आवेश में स्नायुरोग के लक्षण प्रकट होते हैं; पेट की गड़बड़ अथवा ऐसा कोई दूसरा उत्पात दीख पड़ता है। अब वह सोचने लगते हैं कि उनके पेट की गड़बड़ समाज व प्रेम की समस्याओं का सामना करने का पर्याप्त बहाना है। कई दूसरे पुरुष अपने व्यवसाय में लगातार परिवर्तन करते रहते हैं। वे हमेशा ऐसे व्यवसाय की कल्पना कर सकेंगे जो उनके लिए अधिक उपयुक्त होगा, परन्तु अन्त में दिखाई पड़ता है कि वे किसी भी व्यवसाय में नहीं टिक सकते; वे सदैव एक धन्धे से दूसरे धन्धे की ओर झुके रहते हैं।

समस्याजनक बच्चों के प्रति हमारा पहला कर्तव्य यह है कि उनकी दिलचस्पी का पता लगाएँ। इस दिलचस्पी द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से उत्साहित करना आसान होगा। ऐसे नवयुवकों के विषय में जो अब तक किसी व्यवसाय को अपना नहीं सके अथवा बड़ी उम्र के व्यक्तियों के विषय में जो अपने व्यवसायों में असफल रहे हैं उनकी वास्तविक दिलचस्पी का पता लगाना और उसका प्रयोग करना तथा उनके लिए किसी काम-काज को खोजते हुए उन्हें व्यवसाय-सम्बन्धी मन्त्रणा देना उचित है। ऐसा करना सदा आसान नहीं होता। हमारे आज के समय में बेकारों की इतनी बड़ी संख्या का होना खतरे की बात है। एक ऐसे समय के लिए, जब कि लोग सहयोग के साधन को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह उचित अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए मेरा विश्वास है कि हर किसी को, जो कि सहयोग के महत्व को समझ चुका हो, उचित है कि वह देखे कि समाज में व्यक्ति बेकार न रहें, जो कोई भी चाहे उसे काम मिल सके। इस दिशा में हम शिक्षणालयों, विशिष्ट-यान्त्रिक शिक्षा के स्कूलों और वयस्क शिक्षा के

आन्दोलनों की प्रेरणा देकर सहायता पहुँचा सकते हैं। बेकारों में बहुत से व्यक्ति अनभ्यस्त और अदक्ष हुआ करते हैं। शायद उनमें से कुछ लोग सामाजिक जीवन में दिलचस्पी न ले सके हों। यह मानव-समाज के लिए बड़े बोझ की बात है कि अदक्ष और ऐसे व्यक्ति जो साझी भलाई में दिलचस्पी न लें, समाज के सदस्य हों। ये व्यक्ति वास्तव में अपने को पिछड़ा हुआ और अलाभकारी स्थिति में अनुभव करते है और यदि अपराधियों, स्नायुरोगियों और आत्म-हत्यारों का अधिकांश अनभ्यस्त तथा अदक्ष लोगों का हो तो हम इसे आसानी से समझ सकते हैं। शिक्षा, अभ्यास और प्रयास के अभाव के कारण ही वे मानव-समाज से पीछे रह जाते हैं। सब माता-पिताओं, अध्यापकों और उन सब लोगों को, जिनकी दिलचस्पी मानव-भविष्य के विकास और उन्नति में हो, प्रयत्नशील रहना चाहिए कि सब बच्चों को अच्छी शिक्षा दी जाय तथा उनकी इतनी बड़ी संख्या श्रम-विभाजन में किसी भी विशेष स्थान के अयोग्य रहकर वयस्क अवस्था में पाँव न रखे।